अध्यात्म

संजीवनी

भक्तिमय भजन संग्रह

(६ से १०)

अध्यात्म संजीवनी

भक्तिमय भजन संग्रह

प्राचीन कवियों व ज्ञानियों द्वारा विरचित
आध्यात्मिक भक्ति गीतों व स्तुतियों का
अनुपम संकलन

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
मुम्बई

प्रथम संस्करण :

२४वें तीर्थंकर वर्तमान शासन नायक बालब्रह्मचारी
श्री महावीर भगवान के मोक्ष कल्याणक के पावन अवसर पर
प्रकाशित, कार्तिक कृष्ण ३०, २१ अक्टूबर २०२५–

मुमुक्षुता की प्रगटता व भावना ही इस पुस्तक का मूल्य है।

अध्यात्म संजीवनी में समाहित गीत सभी प्रमुख
AUDIO APP - Gaana, JioSaavan, Amazon Music, Spotify, Apple Music, Hungama, Google Music, Wynk Music, Youtube Music
आदि पर निःशुल्क उपलब्ध है।

प्राप्ति स्थान :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
३०२, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. ३०, नवयुग सीएचएस लि.
वी.एल. मेहता मार्ग, विले पार्ले (पश्चिम), मुम्बई ४०००५६
website: www.vitragvani.com, e-mail: info@vitragvani.com

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्) ३६४२५०, फोन: ०२८४६ २४४३३४, २४४३५८
website: www.kanjiswami.org, e-mail: contact@kanjiswami.org

तीर्थधाम मंगलायतन
अलीगढ़-सासनी मार्ग, सासनी-२०४२१६ (हाथरस), उत्तरप्रदेश
मोबा. ९९९७९९६३४६, ९७५६६३३८००
Website: www.mangalayatan.com; e-mail: info@mangalayatan.com

पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-४, बापू नगर, जयपुर ३०२०१५
फोन. ०१४१ २७०७४५८, २७०५५८१
Website: www.ptst.in, e-mail: info@ptst.in

अहो भाव

वीतरागी देव–शास्त्र–गुरू इस पवित्र जैन शासन के मूल आधार हैं। धर्मी श्रावकों को इनके प्रति सहज ही परम उत्कृष्ट अहोभाव आता है। जिनधर्म के प्रति अपूर्व भावना से प्रेरित होकर हजारों वर्षों से प्राकृत, संस्कृत और वर्तमान में हिन्दी तथा अन्य प्रचलित देशीय भाषाओं में अनेक ज्ञानियों व आत्मार्थी कवियों ने आध्यात्मिक भक्ति साहित्य की रचना की है। इन कवि रत्नों में कविवर दौलतरामजी, श्री भूधरदासजी, श्री भागचन्दजी, श्री बुधजनजी, श्री द्यानतरायजी आदि द्वारा प्रसूत ये सभी भक्तियाँ भेदविज्ञान, वीतरागता व वैराग्य रस से सराबोर हैं। इन्हीं कवियों के भक्ति उपवन में से कुछ उत्कृष्ट भक्ति पुष्पों का संकलन यहाँ **अध्यात्म संजीवनी** के रूप में निबद्ध कर प्रस्तुत किया जा रहा है; अतः सर्वप्रथम हम उन सभी ज्ञानी कवियों के प्रति अपनी श्रद्धा सुमन समर्पित करते हैं।

प्रस्तुत अध्यात्म संजीवनी में ख्यातिप्राप्त संगीतकार एवं गायक श्री आसित देसाई, आलाप देसाई तथा सुरेश जोशी द्वारा संगीत की मधुर लहरियाँ तथा देश के कई प्रसिद्ध गायक कलाकारों द्वारा स्वर लहरियाँ प्रदान की गई हैं; अतः हम उन सभी कलाकारों व सहयोगियों के प्रति भी अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

इन आध्यात्मिक पदों को आत्मार्थी भव्य जीवों की आत्मरूचि पुष्ट करने, चिरकाल तक सुरक्षित रखने एवं आगामी पीढ़ी तक पहुँचाने की पवित्र भावना से ही **श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई** के द्वारा यह प्रयास किया गया है। आशा है कि आत्मार्थीजन

- श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विले पार्ले, मुम्बई

अनुक्रमणिका

एलबम-6 अध्यात्म संजीवनी (भाग-6)			पेज नं.
१.	मन-वच-तन कर शुद्ध भजो जिन....	पं.दौलतरामजी	01
२.	सुणिल्यो जीव सुजान.....	पं.बुधजनजी	03
३.	सुनो जिया ये सतगुरु की बातें.....	पं.दौलतरामजी	05
४.	धन्य ते प्राणी.....	पं.भागचंदजी	07
५.	मोहि जीव भरमताई नहि.....	पं.दौलतरामजी	09
६.	देखो भाई! आतमराम विराजैं.....	पं.द्यानतरायजी	11
७.	चेतो चेतन निज में आओ.....	पं.ब्रह्मानंदजी	13
८.	गलता नमता कब आवैगा.....	पं.द्यानतरायजी	15
९.	भाखुं हित तेरा.....	पं.दौलतरामजी	17
१०.	ये मोह उदय दुख पावै.....	पं.भागचंदजी	19

एलबम-7 अध्यात्म संजीवनी (भाग-7)			
१.	मेरा साई तो मों में.....	पं.बुधजनजी	23
२.	सुनकर वाणी जिनवर की.....	पं.बुधजनजी	25
३.	कब मैं साधु स्वरूप धरूँगा.....	पं.भागचंदजी	27
४.	उठो रे सुज्ञानी जीव.....	पं.बुधजनजी	29
५.	भाई! अब में ऐसा जाना.....	पं.द्यानतरायजी	31
६.	निज हित कारज करना.....	पं.दौलतरामजी	33
७.	मगन रहो रे.....	पं.द्यानतरायजी	35
८.	आतम अनुभव आवै.....	पं.भागचंदजी	37
९.	जानत क्यों नहि रे.....	पं.दौलतरामजी	39
१०.	जीवनि के परिणामनि की.....	पं.भागचंदजी	41

एलबम-8 अध्यात्म संजीवनी (भाग-8)			
१.	हे जिन तेरो सुजस...	पं.दौलतरामजी	45
२.	धन्य-धन्य जिनवाणी माता...	-	47
३.	धन-धन जैनी साधु...	पं.भागचंदजी	49
४.	निपट अयाना...	पं.दौलतरामजी	51
५.	विष सम विषयन...	पं.दौलतरामजी	53
६.	सुमर सदा मन आतमराम...	पं.भागचंदजी	55
७.	न मानत यह जिय...	पं.दौलतरामजी	57
८.	अपनी सुधी भूल आप...	पं.दौलतरामजी	59
९.	स्वानुभव के बिना...	-	61
१०.	ऐसे विमल भाव जब पाव...	पं.भागचंदजी	63

अनुक्रमणिका

एलबम-9 अध्यात्म संजीवनी (भाग-9)			पेज नं.
१.	तोरे दर्शन सो...	पं.बुधजनजी	67
२.	अरहन्त सुमन मन बावरे...	पं.द्यानतरायजी	69
३.	जिनवाणी माता रत्नत्रय...	पं.जयकुमरजी	71
४.	गुरु समान दाता नहीं कोई...	पं.द्यानतरायजी	73
५.	अहो चैतन्य आनन्दमय...	पं.रविंद्रजी	75
६.	भाई ! कहा देख गरवाना रे...	पं.द्यानतरायजी	79
७.	आया कहां से, कहाँ है जाना ?	-	81
८.	भजन बिन यो ही जनम गंवायो...	पं.बुधजनजी	83
९.	अहो ! यह उपदेश मांही...	पं.भागचंदजी	85
१०.	असंख्यात प्रदेश जाके ...	पं.द्यानतरायजी	87
एलबम-10 अध्यात्म संजीवनी (भाग-10)			
१.	દૂર કાં પ્રભુ ! દોડ તું.....	-	91
२.	विषयों की तृष्णा को छोड़ के.....	-	93
३.	हे प्रभुवर धन्य हो तुम.....	-	95
४.	और अबै न कुदेव सुहावै.....	पं.दौलतरामजी	97
५.	नाथ मोहि तारत क्यों ना.....	पं.दौलतरामजी	99
६.	तन देख्या अथिर घिनावना.....	पं.बुधजनजी	101
७.	आतम अनुभव करना रे भाई.....	पं.द्यानतरायजी	103
८.	आतम जानो रे भाई.....	पं.द्यानतरायजी	105
९.	परनति सब जीवनकी.....	पं.भागचंदजी	107
१०.	आतम अनुभव आवै.....	पं.भागचंदजी	109

अध्यात्म संजीवनी

भाग - ६

1 मन वच तन कर शुद्ध भजो जिन...

मन वच तन कर शुद्ध भजो जिन, दाव भला पाया ।
अवसर फेर मिले नहिं ऐसो, यो सतगुरु गाया ॥१॥

बस्यो अनादि निगोद निकसि, फिर थावर देह धरी ।
काल असंख्य अकाज गंवायो, नेक न समझ परी ॥२॥

चिन्तामणि दुर्लभ लहिये, त्यों त्रस पर्याय लही ।
लट पिपील अलि आदि जन्म में, लहो न ज्ञान कहीं ॥३॥

पंचेन्द्रिय पशु भयो कष्ट तें, तहाँ न बोध लहो ।
स्वपर विवेक रहित बिन संयम, निश दिन भार बहो ॥४॥

चौपथ चलत रतन लहिये, त्यों मनुष देह पाई ।
सुकुल जैनवृष सत् संगति ये अति दुर्लभ भाई ॥५॥

यों दुर्लभ नर देह कुधी जे विषय संग खोवें ।
ते नर मूढ़ अजान सुधारस पाय पाँव धोवै ॥६॥

दुर्लभ नरभव पाय, सुधी जे, जैनधर्म सेवें ।
'दौलत' ते अनन्त अविनाशी शिव सुख को वेवें ॥७॥

हे प्राणी! सद्गुरु कहते हैं कि बहुत भाग्य से शुभ अवसर मिला है इसलिये मन–वचन–काय को शुद्ध करके श्री जिनेन्द्र भगवान का ध्यान करो। ऐसा अवसर बार–बार नहीं मिलता है ।।१।।

अनादि काल से निगोद में रहा और वहाँ से निकलकर स्थावर पर्याय प्राप्त की एवं तुमने अज्ञान के कारण असंख्य काल आत्म कल्याण किये बिना ही गंवा दिया है ।।२।।

जिस प्रकार चिन्तामणि रत्न प्राप्त करना दुर्लभ है उसी प्रकार तुमने इस दुर्लभ त्रस पर्याय को प्राप्त किया है, चीटीं, इल्ली, भंवरें आदि पर्यायों में सम्यक ज्ञान प्राप्त करना असंभव है ।।३।।

उसके बाद पंचेन्द्रिय पशु पर्याय प्राप्त कर बहुत कष्ट सहन किया परन्तु कहीं भी ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई। अपने व पराये के ज्ञान बिना और संयम के बिना दिन–रात बहुत दुख सहन किया।।४।।

जिस प्रकार चौराहे पर पड़े हुये रत्न की किसी को प्राप्ति हो जाये, उसी प्रकार तुमने यह मनुष्य देह की प्राप्ति की और उसमें भी जैन कुल, जैन धर्म और सज्जनों की संगति प्राप्त करना तो महादुर्लभ है।।५।।

जो व्यक्ति दुर्लभ मनुष्य देह को प्राप्त करके विषय भोगों में बरबाद करते हैं ऐसे मनुष्य मूर्ख और अज्ञानी होते हैं मानो वे अमृत को प्राप्त कर उससे पैर धोने का कार्य करते हैं।।६।।

कविवर पण्डित दौलतरामजी कहते हैं कि जो बुद्धिमान पुरुष दुर्लभ मनुष पर्याय को प्राप्त करके जैन धर्म का सेवन करते हैं वे पुरुष अनंत और अविनाशी मोक्ष सुख का बीज बोते हैं अर्थात् भविष्य में मोक्ष पद प्राप्त करते हैं।।७।।

2

सुणिल्यो जीव सुजान...

सुणिल्यो जीव सुजान, सीख सुगुरु हित की कही।।
रुल्यौ अनन्ती बार, गति गति साता ना लही।।टेक।।
कोइक पुण्य संजोग, श्रावक कुल नर गति लही।
मिले देव निर्दोष, वाणी भी जिनकी कही।।१।।
सुणिल्यो जीव सुजान.....

चर्चा को परसंग (प्रसंग), अरु श्रद्धा में बैठिवो।
ऐसा अवसर फेरि, कोटि जनम नहिं भेंटवो।।२।।
सुणिल्यो जीव सुजान.....

झूठी आशा छोड़ि, तत्त्वारथ रुचि धारिल्यो।
या में कछु न विगार, आपो आप सुधारि ल्यो।।३।।
सुणिल्यो जीव सुजान....

तन को आतम मानि, भोग विषय कारज करो।
यौं ही करत अकाज, भव भव क्यों कूवे परो।।४।।
सुणिल्यो जीव सुजान.....

कोटि ग्रंथ को सार, जो भाई 'बुधजन' करो।
राग-द्वेष परिहार, याही भाव सों उद्धरो।।५।।
सुणिल्यो जीव सुजान।।

हे बुद्धिमान चेतन! सुनो। सुगुरू ने तुम्हारे हित की बात कही है। तुम अनंत बार संसार की गतियों में भ्रमण करके दुःखी हुये हो और तुम्हें कहीं भी शांति प्राप्त नहीं हुई।।टेक।।

कभी किसी पुण्य के संयोग से मनुष्य पर्याय, श्रावक कुल प्राप्त हुआ और महासौभाग्य से ऐसे सच्चे देव मिले, जिनकी वाणी भी निर्दोष है अर्थात् जिनागम के अनुसार है।।१।।

साथ ही आत्म चर्चा करने वाले लोगों की संगति भी प्राप्त हुई तथा स्वयं की श्रद्धा में भी यह तत्त्व उचित प्रतीत हुआ। अब ऐसा अवसर करोड़ों जन्मों में भी फिर से प्राप्त नहीं होने वाला हैं।।२।।

हे चेतन! संसार प्राप्ति की इस झूठी आशा का त्याग करो, तत्त्व तथा उसके अर्थ को समझकर धारण करो । इसमें तुम्हारा कोई अहित नहीं होगा, तुम अपनी भूल से ही दुखी हो, उसे सुधारो।।३।।

हे ज्ञायक! तुम शरीरादिक परद्रव्यों को ही अपना मानकर विषय-भागों में लगे रहे, परंतु यह कार्य करने योग्य नहीं क्योंकि इससे संसार रूपी कुएँ में जन्म-मरण ही करते रहोगे, सुख प्राप्त नहीं कर पाओगे।।४।।

कविवर बुधजनजी कहते हैं कि हे भव्य! करोड़ों ग्रन्थों का सार यही है कि जो जीव राग-द्वेषादिक विभाव भावों का त्याग करेगा वही जीव इस संसार सागर को पार कर सकेगा ।।५।।

3

सुनो जिया ये सतगुरु की बातैं...

सुनो जिया ये सतगुरु की बातें,
हित कहत दयाल दया तें।।टेक।।

यह तन आन अचेतन है तू,
चेतन मिलत न यातें।
तदपि पिछान एक आतम को,
तजत न हठ शठता तें।।१।। सुनो.।।

चहुँगति फिरत भरत ममता को,
विषय महाविष खातैं।
तदपि न तजत न रजत अभागै,
दृग व्रत बुद्धि सुधातैं।।२।। सुनो.।।

मात तात सुत भ्रात स्वजन तुझ,
साथी स्वारथ नातैं।
तू इन काज साज गृहको सब,
ज्ञानादिक मत घातै।।३।। सुनो.।।

तन धन भोग संजोग सुपन सम,
वार न लगत विलातैं।
ममत न कर भ्रम तज तू भ्राता,
अनुभव–ज्ञान कलातैं।।४।। सुनो.।।

दुर्लभ नर–भव सुथल सुकुल है,
जिन उपदेश लहा तैं।
'दौल' तजो मनसौं ममता ज्यों,
निवड़ो द्वंद दशातैं।।५।। सुनो.।।

अरे मन! तू सत्गुरु का उपदेश सुन। वे दयालु, करुणा करने वाले तेरे हित के लिये ही कहते हैं।। टेक।।

यह देह अचेतन है और तू चेतन है, यह अन्य है, तुझसे भिन्न है इसलिये इस देह से तुम्हारा कोई मेल नहीं है फिर भी देह और आत्मा को तू एक मान रहा है। तू अपनी हठ नहीं छोड़ता इसलिये तू मूर्ख बना हुआ है ।।१।।

तू मोहवश चारों गतियों में भ्रमण करता हुआ, इंद्रिय विषयों के भोगरूपी महाविष का पान कर रहा है फिर भी तू उसको नहीं छोडता है। हे भाग्यहीन! उसमें तू प्रसन्न मत हो अपनी भूल सुधार और अपने स्वभाव रूप दर्शन, ज्ञान व चारित्ररूपी अमृत का पान कर।।२।।

माता–पिता,पुत्र–भाई और तेरे कुटुम्बीजन सब ही स्वार्थ के सम्बन्धी हैं, तू इनके लिये घर को सुन्दर और व्यवस्थित बनाने में लगे रहने से अपने ज्ञान आदि गुणों का का नाश मत कर।।३।।

यह तन, यह धन और इनका भोग – ये सब संयोग स्वप्न के समान हैं और इनके विलय होने में देर नहीं लगती। हे भाई! इनसे ममत्व मत कर। तू स्वानुभव और ज्ञान द्वारा अपना भ्रम छोड दे।।४।।

महाभाग्य से तुझे यह दुर्लभ मनुष्यभव, सुक्षेत्र, उत्तम कुल तुझे मिला है और साथ ही श्री जिनेन्द्र का उपदेश सुनने का अवसर भी मिला है। अतः अब कविवर पण्डित श्री दौलतरामजी कहते हैं कि मन से ममत्व छोड़कर इस दुविधा से शीघ्र ही छुटकारा पाओ।।५।।

4

धन्य ते प्राणि...

धन्य ते प्राणि, जिनके तत्त्वारथ श्रद्धान।।टेक।।
रहित सप्तभय, तत्त्वारथ में चित्त, न संशय आन।
कर्म कर्मफल की नहिं इच्छा, पर में धरत न ग्लान।।१।।
धन्य ते प्राणी जिनके तत्त्वारथ श्रद्धान।।

सकल भाव में मूढ़ दृष्टि तज, करत साम्य रस पान।
आतम धर्म बढ़ावैं वा, परदोष न उचरैं वान।।२।।
धन्य ते प्राणी जिनके तत्त्वारथ श्रद्धान।।

निज स्वभाव वा जैन धर्म में, निज पर थिरता दान।
रत्नत्रय महिमा प्रगटावें, प्रीति स्वरूप महान।।३।।
धन्य ते प्राणी जिनके तत्त्वारथ श्रद्धान।।

ये वसु अंग सहित निर्मल यह, समकित निज गुण जान।
'भागचन्द' शिव महल चढ़न को, अचल प्रथम सोपान।।४।।
धन्य धन्य ते प्राणी जिनके तत्त्वारथ श्रद्धान।।

वे प्राणी धन्य हैं जिन्हें तत्त्वों का सम्यक् श्रद्धान हो जाता है।।टेक।।

ऐसे प्राणी सप्त भयों से रहित होते हैं, इनका उपयोग तत्त्वों के चिन्तन में रत रहता है और इन्हें तत्त्वों के स्वरूप में कोई शंका नहीं होती। ऐसे जीव कर्म व उसके फल की इच्छा भी नही रखते हैं और पर में हीनाधिकता का भाव नहीं भी रखते हैं।।१।।

तत्त्वश्रद्धानी जीव सकल पदार्थों में मिथ्या मान्यता का त्याग कर समता रस का पान करते हैं। वे आत्मा के धर्म को बढ़ाते हैं और दूसरों के दोषों को प्रगट करने वाले वचन नहीं कहा करते ।।२।।

तत्त्व श्रद्धानी प्राणी अपने आत्म स्वभाव में और जैन धर्म के सिद्धांतों में स्थिर रहते हैं। वे अपने स्वरूप में विशेष प्रीति करते हुये रत्नत्रय की महिमा प्रगट करते हैं।।३।।

कविवर भागचन्दजी कहते हैं कि तत्त्वश्रद्धानी जीव आठों अंग सहित निर्मल सम्यक्त्व गुण को अपना गुण अनुभव करते हैं और यह आत्मानुभव, मोक्ष महल आरोहण के लिये स्थिर रहने वाला प्रथम चरण है। अतः तत्त्वों के सम्यक् श्रद्धान करने वाले वे प्राणी धन्य हैं।।४।।

5 मोही जीव भरमतमतैं नहिं...

मोही जीव भरम तम तैं नहिं,
वस्तुस्वरूप लखै है जैसे।।टेक।।

जे जे जड़ चेतन की परनति,
ते अनिवार परनवै वैसे।
वृथा दुखी शठ कर विकल्प यौं,
नहिं परिनवैं परिनवैं ऐसैं।।१।।

अशुचि सरोग समल जड़मूरत,
लखत विलात गगनधन जैसे।
सो तन ताहि निहार अपनपो,
चहत अबाध रहै थिर कैसे।।२।।

सुत–पित–बंधु–वियोग–योग यौं,
ज्यौं सराय जन निकसे पैसें।
विलखत हरखत शठ अपने लखि,
रोवत हँसत मत्तजन जैसे।।३।।

जिन–रवि वैन–किरन लहि जिन निज,
रूप सुभिन्न कियो परमैसें।
सो जगमौल 'दौल' को चिर–थित,
मोह विलास निकास हृदै सें।।४।।

मोही जीव अपने भ्रमरूपी अंधकार के कारण वस्तु स्वरूप को जैसा है, वैसा नहीं देख पाता।।टेक।।

चेतन और अचेतन पदार्थों की जो-जो परिणति होती है, जैसी होनी है, उसे कोई बदल नहीं सकता किन्तु यह मूर्ख व्यर्थ ही ऐसे विकल्प करके दुखी होता है कि यह वस्तु ऐसे क्यों नहीं परिणमित हो रही है? ऐसे क्यों हो रही है? इसे ऐसे परिणमित नहीं होना चाहिये, इसे ऐसे परिणमित होना चाहिये।।१।।

यह शरीर अपवित्र है, रोगयुक्त है, मलिन है, जड़मूर्ति है और आकाश में बादलों की तरह क्षण भर में दिखकर विलीन हो जाने वाला है, किन्तु यह मोही जीव उसमें अपनापन देखता है और चाहता है कि यह अबाधरूप से स्थिर कैसे रहे?।।२।।

पिता-पुत्र व भाई-बन्धुओं का संयोग-वियोग तो वास्तव में ऐसा है जैसा कि धर्मशाला में यात्रियों का आवागमन, किन्तु यह मूर्ख उन्हें अपना मानकर उनके वियोग-संयोग में इस प्रकार दुखी होता है, इस प्रकार रोता-हंसता है, जैसे कोई पागल हो।।३।।

कविवर पण्डित दौलतरामजी कहते हैं कि जिन जीवों ने जिनेन्द्र भगवान रूपी सूर्य की वचनरूपी किरणों को प्राप्त करके पर में से अपना रूप भलीभाँति भिन्न जान लिया है, वे ही जगत के मुकुट हैं उन्होंने ही अपने हृदय से अनादिकालीन मोह के विलास को बाहर निकाला है।।४।।

6

देखो भाई! आतम राम विराजै...

देखो भाई! आतम राम विराजै.......
छहों द्रव्य नव तत्त्व ज्ञेय हैं, आप सुज्ञायक छाजै।।
देखो भाई! आतमराम विराजै।।टेक।।

अर्हत सिद्ध सूरि गुरु मुनिवर, पाँचों पद जिहिमांही।
दर्शन ज्ञान चरण तप जिहि में, पटतर कोऊ नाहीं।।१।।
देखो भाई! आतमराम विराजै.......

ज्ञान चेतना कहिये जाकी, बाकी पुद्गल केरी।
केवलज्ञान विभूति जासु कै, आन विभो भ्रम केरी।।२।।
देखो भाई! आतमराम विराजै.......

एकेन्द्री पंचेन्द्री पुद्गल, जीव, अतीन्द्रिय, ज्ञाता।
'द्यानत' ताही शुद्ध द्रव्य को, जानपनो सुखदाता।।३।।
देखो भाई! आतमराम विराजै.......

हे जीव! देखो आतमराम शोभायमान हो रहा है छह द्रव्य और नव तत्त्व[१] जानने योग्य हैं और तुम उनको जानने वाले ज्ञायक हो।। टेक।।

अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और मुनि ये पाँचों पद जिसके स्वरूप में विराजमान हैं। दर्शन, ज्ञान, चारित्र,तप आदि सभी गुण इसी में समान रूप से विद्यमान हैं, सभी अतुलनीय है।।१।।

एक मात्र ज्ञान चेतना ही जीव की है बाकी सब पुदगल की पर्याय हैं। हे भव्य! तेरे अंदर केवलज्ञान सदृश अनेकों निधियाँ विराजमान हैं जिन्हें भ्रम के कारण तू भूल गया है।।२।।

एकेन्द्रिय अथवा पंचेन्द्रिय, यह पुद्गल शरीर की अपेक्षा भेद कथन है, वास्तव में जीव में ऐसा कोई भेद नहीं है, वह तो इन्द्रियातीत, शुद्ध ज्ञायक स्वरूप है। अतः कविवर द्यानतरायजी कहते हैं कि इसी शुद्ध आत्मद्रव्य को जानो, पहचानो, यह ही सुख की खान है।

नोट : १. नवतत्व = सात तत्व + पुण्य व पाप
(किसी अपेक्षा से नव पदार्थ को नव तत्व भी कहा जाता है।)

7

चेतो चेतन निज में आवो...

चेतो चेतन निज में आवो, अन्तर आत्मा बुला रही है।।टेक।।
जग में अपना कोई नहीं है...तू तो ज्ञानानन्दमयी है।
एक बार अपने में आजा, अपनी खबर क्यों भुला दई है।।१।।

तन धन जन ये कुछ नहीं तेरे, मोह में पड़कर कहता है मेरे।
जिनवाणी को उर में धर ले, समता में तुझे सुला रही है।।२।।

निश्चय से तू सिद्ध प्रभु सम, कर्मोदय से धारे है तन।
स्याद्वाद के इस झूले में, माँ जिनवाणी झुला रही है।।३।।

मोह राग और द्वेष को छोड़ो, निज स्वभाव से नाता जोड़ो।
'ब्रह्मानन्द' जल्दी तुम चेतो, मृत्यु पंखा झुला रही है।।४।।

ज्ञायक हो ज्ञायक हो बस तुम, ज्ञाता दृष्टा बनकर जीवो।
जागो जागो अब तो चेतन, माँ जिनवाणी जगा रही है।।५।।

हे चेतन! अब जाग्रत हो जाओ और अपने स्वरूप में आ जाओ। तुम्हारी अंतर आत्मा तुम्हें आमंत्रण दे रही है।। टेक।।

इस संसार में कोई किसी का सहायक नहीं है, हितकारी तो एकमात्र अपना स्वभाव ही है और तुम स्वयं ज्ञान और आनंद स्वभावी हो। तुम बस एक बार अपने शुद्ध स्वभाव की पहचान कर लो, अपने पवित्र आत्म स्वरूप को क्यों भूल रहे हो?।।१।।

हे चेतन! इन शरीर, धन और परिजन से तेरा कोई वास्तविक संबंध नहीं है। तू मोह के कारण ही इन्हें अपना कहते हो। अतः अब तू अपने हृदय में जिनवाणी को स्थापित कर, जिससे तुझे समता रूपी आनंद की प्राप्ति होगी।।२।।

हे आत्मन्! निश्चय से तू सिद्ध प्रभु के जैसा ही है परन्तु कर्म उदय से तूने यह नश्वर शरीर प्राप्त किया है। जिनवाणी की शैली स्याद्वादमयी है और ऐसा लगता है कि मानो वह स्याद्वाद रूपी झूले से अर्थात् कथन से समस्त विवादों का नाशकर आनंद प्रदान कर रही है।।३।।

हे जीव! तुम मोह–राग–द्वेष का त्याग करो और अपने आत्मस्वरूप को जानो। अतः ब्रह्मानंद कवि कहते हैं कि हे आनंद स्वभावी आत्मा! अब तुम जल्दी जाग्रत हो जाओ क्योंकि मृत्यु का कोई भरोसा नहीं है।।४।।

हे चेतन! तुम ज्ञायक हो, मात्र जानने वाले हो इसलिये मात्र ज्ञाता दृष्टा बनकर जीवन का व्यवहार करो। माता जिनवाणी अपनी वाणी से तुम्हें जगा रही है इसलिये चेतन! अब तो जाग जाओ।।५।।

8

गलतानमता कब आवैगा...

गलता नमता कब आवैगा ...
राग–दोष परिणति मिट जैहै,
तब जियरा सुख पावैगा।। गलता.।। टेक।।

मैं ही ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मैं, तीनों भेद मिटावैगा।
करता किरिया करम भेद मिटि,
एक दरवलौं लावैगा।। गलता.।।१।।

निहचैं अमल मलिन व्योहारी, दोनों पक्ष नसावैगा।
भेद गुण गुणी को नहिं ह्वै है,
गुरु शीख कौन कहावैगा।। गलता. ।।२।।

'द्यानत' साधक साधि एक करि, दुविधा दूर बहावैगा।
वचन भेद कहवत सब मिटकै,
ज्यों का त्यों ठहरावैगा।। गलता.।।३।।

हे आत्मन्! पूरण–गलन के स्वभाव रूप इस पौद्गलिक तथा नश्वर देह से दृष्टि हटाकर तू कब अपने शुद्ध स्वरूप में आवेगा। जब तेरे राग–द्वेष दोनों ही दूर हो जायेंगे तब ही तू अपने आनंदस्वरूप को प्राप्त करेगा।।टेक।।

मैं ही ज्ञाता हूँ, मैं ही ज्ञान हूँ, मैं ही ज्ञेय हूँ तथा मैं ही अपने स्वभाव भावों का कर्ता हूँ, मैं ही क्रिया हूँ और मैं ही कार्य हूँ, इन सभी गुण–पर्याय भेदों से दृष्टि हटाकर मैं एक अभेद आत्मद्रव्य हूँ, जब ऐसी दृष्टि करेगा तब ही सुख प्राप्त होगा।।१।।

निश्चय से तो मैं अविकारी हूँ तथा व्यवहार से विकार सहित देखा जाता हूँ, इस प्रकार जब इन दोनों पक्षों से दृष्टि हटायेंगे तब गुण–गुणी का भेद भी समाप्त हो जायेगा और तू परमानन्द को प्राप्त करेगा, तब वहाँ गुरु–शिष्य का भेद भी समाप्त हो जायेगा ।।२।।

कविवर द्यानतरायजी कहते हैं कि मैं कब अपने निश्चय स्वरूप में अर्थात् साधक और साध्य के भेद को मिटाकर, एक होकर इस दुविधा को दूर करूँगा। वचन से कही जाने वाली भिन्न–भिन्न बातों को आत्मसात कर कब मैं अपने शुद्ध स्वरूप में, जैसा है उसी रूप में स्थिर होऊँगा ।।३।।

9

भाखूँ हित तेरा...

भाखूँ हित तेरा, सुनि हो मन मेरा।।टेक।।
नर नरकादि चारों गति में, भटक्यो तू अधिकानी।
पर परणति में प्रीति करी, निज परणति नाहिं पिछानी।।१।।
सहै दुख क्यों न घनेरा।। भाखूँ हित......

कुगुरु कुदेव कुपंथ पंक फंसि, तैं बहुत खेद लहायो।
शिव सुख दैन जैन जग दीपक, सो तैं कबहुं न पायो।।२।।
मिट्यो न अज्ञान अंधेरा।। भाखूँ हित......

दर्शन ज्ञान चरन निधि तेरी, सो विधि ठगन ठगी है।
पाँचों इन्द्रिन के विषयन में, तेरी बुद्धि लगी है।।३।।
भयो तू इनका चेरा।। भाखूँ हित......

तू जगजाल विषें बहु उरझ्यो, अब करले सुरझेरा।
'दौलत' नेमि चरन पंकज का हो तू भ्रमर सबेरा।।४।।
नसे ज्यों दुख भव केरा।।
भाखूँ हित तेरा, सुनि हो मन मेरा.....

हे जीव! तुम ध्यान से सुनो, मैं तुम्हारे हित की बात कह रहा हूँ।।टेक।।

हे चेतन! तुम मनुष्य, नरक आदि चारों गति में कई बार भव-भ्रमण कर चुके हो और परद्रव्यों के परिणमन को अपना मानकर और अपनी आत्मा को नही पहचान कर तुमने अनंत दुख भोगे हैं।।१।।

हे जीव! तुमने कुगुरु, कुदेव, कुधर्म रूपी कीचड़ में फंसकर बहुत दुखों को प्राप्त किया है और तुमने मोक्ष सुख देने वाले संसार रूपी अंधकार में दीपक के समान जिनशासन को कभी प्राप्त नहीं किया जिससे तुम्हारे अज्ञानरूपी अंधकार का नाश नहीं हो पाया।।२।।

हे प्राणी! कर्म रूपी ठग ने तुम्हारी सम्यग्दर्शन-ज्ञान - चारित्र रूपी संपदा का हरण कर लिया है। पाँचों इन्द्रियों के विषयों में तुम्हारी बुद्धि मगन हो रही है और तुम इनके दास बन गये हो।।३।।

कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि हे जीव! तुम संसार के जाल में बहुत उलझे हुये हो परंतु अब उससे बाहर निकलो। तुम तो भगवान नेमिनाथ के चरण कमलों के भंवरे बन जाओ। इससे ही तुम्हारे संसार के दु:खों का नाश हो जायेगा।।४।।

10

यह मोह उदय दुख पावै...

यह मोह उदय दुख पावै , जग जीव अज्ञानी।।टेक।।
निज चेतन स्वरूप नहिं जाने, पर पदार्थ अपनावे।
पर परिणमन नहीं निज आश्रित, यह तहँ अति अकुलावे।।१।।
यह मोह उदय दुख पावै.......

इष्ट जानि रागादिक सेवै, ते विधि बंध बढ़ावै।
निज हित हेतु भाव चित सम्यक्, दर्शनादि नहिं ध्यावै।।२।।
यह मोह उदय दुख पावै ....

इन्द्रिय तृप्ति करन के काजै, विषय अनेक मिलावै।
ते न मिलें तब खेद खिन्न ह्वै, सम सुख हृदय न लावै।।३।।
यह मोह उदय दुख पावै ....

सकल कर्म क्षय लक्षण लक्षित, मोक्ष दशा नहि चावै।
''भागचन्द' ऐसे भ्रमसेती, काल अनन्त गमावै।।४।।
यह मोह उदय दुख पावै ......

संसार के अज्ञानी जीव मोह के उदय से दुख प्राप्त करते हैं।।टेक।।

संसारी जीव अपने चैतन्य के स्वरूप को नहीं जानता और पर पदार्थों में अपनापन करता है। परद्रव्यों का परिणमन आतमा के आश्रय से नहीं होता, अतः जब वह पराश्रित परिणमन जीव की इच्छानुसार नहीं होता तब यह बहुत आकुलित होता है।।१।।

संसारी जीव रागादि को भला जानकर उनका सेवन करते है यद्यपि उससे कर्मबंधन ही बढ़ता है फिर भी यह जीव आत्मा के हितकारी भाव सम्यक् दर्शन आदि का ध्यान नहीं करता।।२।।

पंचेन्द्रियों को तृप्त करने के लिये अनेक विषय-भोगों को एकत्रित करते हैं और जब ये नहीं मिलते तो बहुत आकुलित होता है और अपने हृदय में समता रूपी सुख प्राप्त नहीं करता क्योंकि संयोग-वियोग तो कर्माश्रित हैं।।३।।

कविवर पण्डित भागचंदजी कहते हैं कि अज्ञानी जीव को समस्त कर्मों का नाश से प्राप्त होने वाली मोक्ष दशा के प्रति प्रेम नहीं होता और इसी मिथ्यात्व को सेवन करता हुआ अनंत काल व्यर्थ में गंवा देता है।।४।।

अध्यात्म संजीवनी

भाग – ७

1 मेरा साई तो मों में...

मेरा साई तो मों में, नाहीं न्यारा, जाने सो जाननहारा ।
पहले खेद सह्यो बिन जानें, अब सुख अपरंपारा ।।
अनन्त चतुष्टय धारक ज्ञायक, गुण परजै द्रव सारा ।
जैसा राजत गंध कुटी में, तैसा मुझ में म्हारा ।।
मेरा साई तो मों में, नाहीं न्यारा.....
हित अनहित मम पर विकलप तैं, कर्म बंध भये भारा ।
ताहि उदय गति गति सुख दुख में, भाव किये दुखकारा ।।
मेरा साई तो मों में, नाहीं न्यारा.....
काललब्धि जिन आगम सेती, संशय भरम विदारा ।
'बुधजन' जान करावन कर्ता, हों हि एक हमारा ।।
मेरा साई तो मों में, नाहीं न्यारा, जाने सो जाननहारा...

मेरा साई अर्थात मेरा प्रभु तो मुझ में ही है अर्थात् मेरा ही स्वरूप होने के कारण मुझसे भिन्न नही है, और जो इस तत्त्व को जान लेता है वह भी न्यारा तत्त्व प्रभु बन जाता है।जब तक मुझे अपने ही भीतर रहने वाले प्रभु (आत्मा) का ज्ञान नही था तब तक मैंने घोर दुःख सहे परन्तु अब जब मुझे इसका ज्ञान हो गया है तब इस ज्ञान सुख का पार ही नही है।।टेक।।

अनन्त चतुष्टय के धारी, जिनके ज्ञान में समस्त द्रव्य-गुण-पर्याय एक साथ झलकते हैं, गंधकुटी में विराजमान अरहंत भगवान जैसा मुझ में ही मेरा स्वरूप है, उससे किंचित भी भिन्न नही है।।१।।

मैं निरंतर परसंयोगों के प्रति हित-अहित, इष्ट-अनिष्ट के विकल्प जाल में उलझा रहा, जिसके कारण अनादि से कर्मबंध करता आया हूँ और जब-जब उन कर्मो का उदय आता है तब-तब गतियों में संक्लेश परिणामों द्वारा अनन्त दुःख को भोगता आया हूँ।।२।।

परन्तु अब निश्चित ही शुभ काललब्धि के कारण जिनागम का सेवन हुआ है जिससे समस्त संशय एवं भ्रमरूप अज्ञान का नाश हो गया है। कविवर बुधजनजी कहते हैं कि जिनवाणी के अभ्यास से यह निश्चय हुआ है कि इस अलौकिक ज्ञान का कर्ता यह जीव स्वयं ही है और कोई इसका कारण नहीं हो सकता, अतः अब अपना कल्याण करने के उपाय में शीघ्र ही लगना चाहिये।।३।।

2

सुनकर वाणी जिनवर की...

सुनकर वाणी जिनवर की,
म्हारे हर्ष हिये न समाय जी ।। टेक ।।
काल अनादि की तपन बुझायी,
निज निधि मिली अथाहजी ।। 1 ।।
संशय, भ्रम और विपर्यय नाशा,
सम्यग्बुद्धि उपजाय जी ।।2।।
नर–भव सफल भयो अब मेरो,
'बुधजन' भेंटत पायजी ।। 3 ।।

समस्त राग–द्वेष के विकारों से रहित और केवलज्ञान के धारी श्रीजिनेन्द्र भगवान की दिव्यध्वनि सुनकर मेरे हृदय में अत्यधिक आनन्द का अनुभव हो रहा है।।टेक।।

हे प्रभो! आपकी दिव्यवाणी सुनकर मेरे अनादिकालीन अज्ञान रूपी ताप का आज अंत हो गया है और मुझे आत्मज्ञान रूपी निधि की प्राप्ति हो गई है।।१।।

हे परमात्मा! आपके द्वारा प्रतिपादित इस तत्त्वज्ञान से मेरे संशय और विपरीतमय अज्ञान का नाश हो गया है और सम्यग्ज्ञान प्रगट हो गया है।।२।।

कविवर बुधजनजी कहते हैं कि हे जिनेन्द्र देव! आपकी यह उपकारी वाणी सुनकर मेरा यह मनुष्य भव मानो आज सफल हो गया है क्योंकि अब संसार परिभ्रमण का कारण और उससे मुक्त होने का सच्चा मार्ग मुझे ज्ञात हो गया है।।३।।

3

कब मैं साधु स्वरूप धरूँगा...

कब मैं साधु स्वरूप धरूँगा।।
बन्धु वर्ग से मोह त्याग के, जनकादिक जन सौ उबरूँगा।
तुम जनकादि देह सम्बन्धी, तुमसों मैं उपजूँ न मरूँगा।।1।।
कब मैं साधु स्वरूप धरूँगा।।

श्री गुरु निकट जाय तिन वच सुन, उभय लिंग धर वन विचरूँगा।
अन्तर मूर्छा त्याग नग्न ह्वै, बाहिर ताकी हेत हरूँगा।।2।।
कब मैं साधु स्वरूप धरूँगा।।

दर्शन ज्ञान चरण तप वीरज, या विधि पंचाचार चरूँगा।
तावत निश्चल होय आप में, पर परिणामनि सौ उबरूँगा।।3।।
कब मैं साधु स्वरूप धरूँगा।।

चाखि स्वरूपानन्द सुधारस, चाह दाह में नांहि जरूँगा।
शुक्ल ध्यान बल, गुण श्रेणी चढ़ि, परमातम पद सौ न टरूँगा।।4।।
कब मैं साधु स्वरूप धरूँगा।।

काल अनन्तानन्त, यथारथ रह हूँ, फिर न विभान फिरूँगा।
'भागचन्द' निर्द्वन्द निराकुल, यासौं नहिं भव भ्रमण करूँगा।।5।।
कब मैं साधु स्वरूप धरूँगा।।

मैं दिगम्बर मुनिदशा कब धारण करूँगा, ऐसे पवित्र विचार भव्य जीवों के चित्त में सदा चलते रहते हैं।।टेक।।

मैं मित्र-बन्धुओं से मोह त्यागकर संसार और संसारीजनों से कब मुक्त होऊँगा। इस देह को जन्म देने वाले हे माता-पिता! अब मैं जन्म-मरण धारण नहीं करूँगा।।१।।

मैं वीतरागी मुनिराज के पास जाकर उनके वचनों को सुनकर द्रव्यलिंग और भावलिंगमयी मुनिस्वरूप धारणकर जंगल में विचरण करूँगा। मैं रागादि भाव का अभाव कर नग्न मुद्रा धारणकर समस्त कर्मों का नाश करूँगा।।२।।

मैं दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार इन पाँच आचारों का नियमपूर्वक पालन करूँगा । मैं आत्मस्वरूप में निश्चल होकर अपने स्वरूप में पर के प्रति समस्त राग भाव का नाश करूँगा।।३।।

मैं अपने आत्मा के ध्यान रूप आनंद अमृत का पान करके, इच्छा-वाँछा रूपी अग्नि में नही जलूँगा एवं शुक्ल ध्यानपूर्वक गुणश्रेणी चढकर अनंत काल के लिये परमात्म पद को प्राप्त करूँगा और फिर कभी भी संसार में नही आऊँगा।।४।।

कविवर भागचन्द जी कहते हैं कि मैं बिना किसी बाधा के आकुलता रहित सिद्ध पद में अनन्त काल तक रहूँगा और फिर कभी भी स्वर्ग आदि गतियों में परिभ्रमण नहीं करूँगा।।५।।

4

उठो रे सुज्ञानी जीव...

उठो रे सुज्ञानी जीव, जिन गुण गावों रे।।टेक।।

निशि तो नसाय गई, भानु को उद्योत भयो।
ध्यान को लगावो प्यारे, नींद को भगावो रे।।1।।
उठो रे सुज्ञानी...

भव वन चौरासी बीच, भ्रमतौ फिरत नीच।
मोह जाल फन्द पर्‌यौ, जन्म मृत्यु पावो रे।।2।।
उठो रे सुज्ञानी...

आरज पृथ्वी में आय, उत्तम जन्म पाय ।
श्रावक कुल को लहाय, मुक्ति क्यों न जावो रे।।3।।
उठो रे सुज्ञानी...

विषयनि राचि राचि, बहु विधि पाप संचि।
नरकनि जायके, अनेक दुख पावौ रे।।4।।
उठो रे सुज्ञानी...

पर को मिलाप त्यागी, आतम जाप लागी।
सुविधि बतावै गुरु, ज्ञान क्यों न लावो रे।।5।।
उठो रे सुज्ञानी ......

हे ज्ञानी जीव! अब जाग्रत हो जाओ और श्री जिनेन्द्र भगवान के गुणों का स्तवन करो।।टेक।।

अज्ञान रूपी अंधकारमयी रात्रि विनष्ट हो गई है और ज्ञान रूपी सूर्य का उदय हो गया है। अब तुम आत्मा में ध्यानस्थ हो और मोह रूपी नींद को भगाओ।।१।।

चौरासी लाख योनियों के भव रूपी वन में तुम दीनहीन होकर भ्रमण कर रहे हो। मोह जाल में फंसकर जन्म–मरण के कष्ट उठा रहे हो। इसलिये हे ज्ञानी जीव अब मोह नींद से उठो।।२।।

तुमने निगोद से पृथ्वीकाय आदि कई गतियों में भ्रमण करते हुये, महाभाग्य से मनुष्य जन्म में श्रावक कुल प्राप्त किया है तो अब निर्वाण क्यों नहीं प्राप्त करते ? अर्थात् अब मोह नींद से उठकर शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त करो।।३।।

तुमने विषय भोगों में रच–पचकर अनेक विधि से पापों का बंध किया है और उसके फलस्वरूप नरक जाकर अनेक प्रकार के दुख भोगे हैं। इसलिये हे ज्ञानी जीव! अब तो जाग्रत हो जाओ।।४।।

तुम पर की संगति का त्याग कर आत्मा की आराधना में लग जाओ। वीतरागी संत हमें आत्मा के उद्धार की सम्यक विधि बता रहे हैं तो उसमें ज्ञान का प्रयोग क्यों नहीं करते ? अतः हे ज्ञानी जीव! अब जाग्रत हो जाओ और जिनेन्द्र भगवान के गुणों का स्तवन करो।।५।।

5

भाई! अब मैं, ऐसा जाना..

भाई! अब मैं, ऐसा जाना.....
पुद्गल द्रव्य अचेत भिन्न हैं, मेरा चेतन बाना।।
भाई! अब मैं, ऐसा जाना...

कल्प अनन्त, सहत दुख बीते, दुख को सुखकर माना।
सुख दुख दोऊ कर्म अवस्था, मैं कर्मन तैं आना।।1।।
भाई! अब मैं, ऐसा जाना....

जहाँ भोर थी तहाँ भई निशि, निशि की ठौर विहाना।
भूल मिटी, जिन पद पहिचान्या, परमानन्द निधाना।।2।।
भाई! अब मैं ऐसा जाना....

गूँगे का गुड़ खाय, कहे किमि, यद्यपि स्वाद पिछाना।
'द्यानत' जिन देख्या ते जानै, आत्म ज्ञान विज्ञाना।।3।।
भाई! अब मैं ऐसा जाना....

अरे भाई! मैंने अब यह जान लिया है कि पुद्‌गल चेतना रहित है, अचेतन है और मेरा आत्मा चेतन है। आत्मा व पुद्‌गल दोनों भिन्न–भिन्न हैं।।टेक।।

अनंत काल दुःख सहन करते हुये बीत गये और मैंने दुःख को ही सुख मान लिया। सुख और दुख दोनों ही कर्म की अवस्थायें हैं। मैं तो कर्मों से अन्य हूँ, अलग हूँ, भिन्न हूँ। मैंने अब यह जान लिया है।।१।।

जहाँ सुबह थी वहाँ रात हो गई। रात के बाद फिर सुबह हो गई, इसीप्रकार सुख–दुख, पुण्य–पाप का भी क्रम चलता रहता है, पर ये भी अलग–अलग नहीं हैं अपितु कर्म ही हैं। जब यह भूल मिट गई और श्री जिनेन्द्र भगवान के चरण कमलों का आश्रय लेकर निज को पहचाना तब परमानन्द की प्राप्ति हुई।।२।।

कविवर द्यानतराय जी कहते हैं कि जिस प्रकार गूँगा व्यक्ति गुड़ खाकर उसके स्वाद को तो जानता है परन्तु उसे व्यक्त करने में अर्थात् कहने में असमर्थ होता है। उसी भाँति मैंने अपना चेतन स्वरूप पहचाना, अनुभव किया पर उस अनुभूति को वचनों के द्वारा नहीं कहा जा सकता।

लोक में प्रसिद्ध कहावत है कि हंस और मेंढक दोनों जल में रहते हैं परन्तु दोनों में बहुत अंतर है, भेद है; इनका भेद जिसने देखा है, अनुभव किया है वह ही दोनों के वास्तविक स्वरूप को जानता है। उसी प्रकार जिसने आत्मा और जड़ के भेद को जान लिया है एवं अनुभव कर लिया है वह ही निश्चय से आत्मा को जानता है।।३।।

6

निज हित कारज करना...

निज हित कारज करना, रे भाई! निज हित कारज करना।
जनम मरन दुख पावत जातें, सो विधि बन्ध कतरना।।
निज हित कारज करना...

ज्ञान, दरश अरु राग, फरस रस, निज पर चिन्ह भ्रमरना।
सन्धि भेद बुधि छैनी तें करि, निज गहि, पर परिहरना।।1।।
निज हित कारज करना...

परिग्रही अपराधी शंके, त्यागी अभय विचरना।
त्यों पर चाह बन्ध दुखदायक, निज गहि, पर परिहरना।।2।।
निज हित कारज करना ...

जो भव भ्रमण न चाहै तो, अब सुगुरु सीख उर धरना।
'दौलत' स्वरस सुधा रस चाखो, ज्यों विनसे, भव भरना।।3।।
निज हित कारज करना ...

हे भाई! अपना आत्महित करो। जिन कर्मों के बन्ध से जन्म-मरण का दुख प्राप्त होता है उन कर्मों का नाश करो। हे भाई! अपना आत्महित करो।।टेक।।

ज्ञान-दर्शन और राग, स्पर्श, रस, आदि में अपने और पराये की पहचान करना। तुम ज्ञान रूपी छैनी से आत्म गुणों और पर द्रव्यों के गुणों के बीच पहचान करके आतमा को ग्रहण करना और पर का त्याग करना।।१।।

परिग्रहवान सदा अपराधी और शंकाशील होता है और परिग्रह का त्यागी निर्भय होकर विचरण करता है। जो इच्छा और बन्ध दुख देने वाले हैं ऐसे पर भावों को दूर करके अपने आतमा का ग्रहण करो।।२।।

कविवर पण्डित दौलतरामजी कहते हैं कि हे भाई! यदि संसार में परिभ्रमण नहीं करना चाहते हो तो श्रीगुरु के उपदेशों को हृदय में धारण करो और अपने आत्मरस के अमृत का स्वाद लो, जिससे संसार के दुखों का नाश हो जाये।।३।।

7

मगन रहो रे...

मगन रहो रे। शुद्धातम में, मगन रहो रे।।
राग द्वेष पर को उत्पात,
निश्चय शुद्ध चेतना जात।।
विधि निषेध को खेद निवार,
आप आप में आप निहार।।
मगन रहो रे। शुद्धातम में, मगन रहो रे।।1।।

बंध मोक्ष विकल्प करि दूर,
आनन्द कन्द चिदातम सूर।।
दर्शन ज्ञान चरण समुदाय,
'द्यानत' यह ही मोक्ष उपाय।।
मगन रहो रे। शुद्धातम में, मगन रहो रे।।2।।

हे भव्य! अपने शुद्धात्म तत्त्व और उसके स्वरूप चिन्तवन में तुम मग्न रहो।।टेक।।

ये राग–द्वेष तो पर द्रव्य के विकार हैं, पर से उत्पन्न हुये हैं। निश्चय से तो तुम्हारी जाति चेतन है अतः इष्ट– अनिष्टके खेद का त्याग करो। अपने आप में केवल अपने आत्म स्वरूप का चिन्तन करो, उसे ही निरखो, देखो और जानो पहचानो। ।।१।।

कविवर द्यानतरायजी कहते हैं कि कर्म बंध और मोक्ष, दोनों का विकल्प छोड़ दो। तब सभी विकल्पों से परे यह चैतन्य आत्मा आनंद का पुंज, सूर्य के समान अनुभव में आयेगा। वास्तव में तो दर्शन, ज्ञान और चारित्र की एकता होना ही सम्यक् का उपाय है।।२।।

8

आतम अनुभव आवै...

आतम अनुभव आवै, जब निज आतम अनुभव आवै।।
तब और कछू न सुहावै, जब निज आतम अनुभव आवै।।टेक।।
जिन आज्ञा अनुसार प्रथम ही तत्त्व प्रतीति अनावै।
वर्णादिक रागादिक तें, निज चिन्ह भिन्न फिर ध्यावै।।1।।
जब निज आतम अनुभव आवै....
मतिज्ञान फरसादि विषय तज, आतम सम्मुख धावै।
नय, प्रमाण, निक्षेप, सकल, श्रुतज्ञान, विकल्प नसावै।।
जब निज आतम अनुभव आवै....
चिद्ऽहं, शुद्धोऽहं इत्यादिक, आप माँहि बुधि आवै।।
तन पै वज्रपात होते हू, नेक न चित्त डुलावै।।2।।
जब निज आतम अनुभव आवै....
स्व संवेद आनन्द बढ़ै अति, वचन कह्यो नहिं जावै।
दर्शन ज्ञान चरन तीनों विच, इक स्वरूप ठहरावै।।3।।
जब निज आतम अनुभव आवै....
चित् कर्ता, चित् कर्म भाव, चित् परिणति क्रिया कहावै।
साधन, साध्य, ध्यान, ध्येयादिक, भेद कछू न दिखावै।।4।।
जब निज आतम अनुभव आवै....
आत्म प्रदेश अदृष्ट तदपि, रस स्वाद प्रगट दरसावै।
ज्यों मिश्री दीसत न अन्ध को, सपरस मिष्ट चखावै।।5।।
जब निज आतम अनुभव आवै.....
जिन जीवन के संसृति, पारावार पार निकटावै।
'भागचन्द' ते सार अमोलक, परम रतन वर पावै।।6।।
जब निज आतम अनुभव आवै.....

जब अपनी आत्मा का अनुभव हो जाता है तब और कुछ अच्छा नहीं लगता।।टेक।।

जिनेन्द्र भगवान की वाणी के अनुसार सर्वप्रथम तत्त्वों के प्रति श्रद्धा होती है तब राग और वर्ण आदि से अपनी आत्मा को भिन्न पहचानकर उसका ध्यान करता है।।१।।

मति ज्ञान, स्पर्श आदि विषयों को त्यागकर आत्मा की प्राप्ति का पुरुषार्थ करता है। नय, प्रमाण, निपेक्ष और श्रुत ज्ञान के समस्त विकल्पों का नाश करता है।।२।।

मैं चैतन्य हूँ, मैं शुद्ध हूँ इत्यादि रूप से आत्मा में ज्ञान स्वयं लीन हो जाता है, तब यदि शरीर पर व्रजपात भी हो जाये तो भी उसका मन रंच मात्र भी चलायमान नहीं होता।।३।।

अपनी आत्मा की अनुभूति का आनंद बहुत बढ जाता है जिसका वर्णन वाणी से नहीं कहा सकता। दर्शन, ज्ञान, चारित्र इन तीनों के भेद समाप्त होकर एकरूपता हो जाती है।।४।।

आत्मानुभव के काल में चैतन्य ही कर्ता, कर्म तथा उसी की परिणति क्रिया कहलाती है, उस समय साध्य-साधना, ध्यान-ध्याता आदि किसी भी प्रकार भेद नहीं रहता ।।५।।

यद्यपि आत्मानुभव के समय आत्मा के प्रदेश दिखाई नहीं पड़ते परन्तु आत्मा के अनुभव का स्वाद प्रत्यक्ष वेदन में आता है, जिस प्रकार अन्धे को मिसरी दिखाई नहीं देती परन्तु उसकी मिठास का अनुभव होता है।।६।।

कविवर भागचन्दजी कहते हैं कि आत्मानुभवी जीवों के संसार भवसागर का किनारा निकट आ जाता है। अनुभव रूपी परम रत्न की प्राप्ति करने वाले के लिये यह अमूल्य जीवन का सार है।।७।।

9

जानत क्यौं नहिं रे...

जानत क्यौं नहिं रे,
हे नर आतमज्ञानी।।
रागदोष पुद्गल की संपति,
निहचै शुद्धनिशानी।।जानत.।।टेक।।

जाय नरकपशुनरसुरगति में,
यह परजाय विरानी।
सिद्धसरूप सदा अविनाशी,
मानत विरले प्रानी।।1।।जानत.।।

कियौ न काहू हरै न कोई,
गुरु–शिख कौन कहानी।
जन्म मरन मलरहित विमल है,
कीचबिना जिमि पानी।।2।।जानत.।।

सार पदारथ है तिहुँ जग में,
नहिं क्रोधी नहिं मानी।
'दौलत' सो घटमाहिं विराजे,
लखि हूजे शिवथानी।।3।।जानत.।।

हे मानव! यह आत्मा ज्ञान स्वरूप है, ज्ञानी है। तू यह बात क्यों नहीं जानता है। निश्चय से आत्मा की निशानी तो उसकी शुद्धता ही है । राग-द्वेष पुद्गल के कारण से होते हैं, अतः ये तेरी नहीं बल्कि पुद्गल की सम्पत्ति हैं।।टेक।।

यह जीव नरक, तिर्यंच, मनुष्य व देव गति में जाता है परंतु ये सब पर्यायें अपनी नहीं हैं । कुछ विरले विवेकी पुरुष ही यह जानते हैं कि यह आत्मा सिद्ध स्वरूप है, कभी नाश को प्राप्त नहीं होता।।१।।

कोई किसी का कुछ नहीं करता, किसी का हरण नहीं करता, कौन गुरु है और शिष्य – ये सभी सम्बन्ध कहने मात्र के हैं। जैसे कीचड के बिना पानी निर्मल होता है उसी तरह आत्मा जन्म-मरण के मैल से रहित है, निर्मल है।।२।।

तीन लोक में यह आत्मा ही सार रूप पदार्थ है, जो न क्रोधी है और न ही मानी । पण्डित दौलतरामजी कहते हैं कि वह आत्मा सदैव ही तेरे अंदर में विराजमान है, जिसने उसे देखा, जाना व पहिचाना वह ही मोक्ष को प्राप्त हो जाता है, मोक्ष के निवास को प्राप्त करता है।।३।।

10

जीवनि के परिणामनि की...

जीवनि के परिणामनि की यह
अति विचित्रता देखहु प्राणी ।

नित्य निगोद मांहि तैं कढ़िकर नर पर्याय पाय सुखदानी।
समकित लहि अन्तर्मुहूर्त में, केवल पाय वरै शिवरानी।।1।।
जीवनि के परिणामनि की...

मुनि एकादश गुणस्थान चढ़ि, गिरत तहाँ तें चित भ्रम ठानी।
भ्रमत अर्द्ध पुद्गल परावर्तन, किंचित् उन काल परमानी।।2।।
जीवनि के परिणामनि की...

निज परिणामन की संभाल में, तातैं गाफिल मत ह्वै प्राणी।
बंध मोक्ष परिणामनि ही सों, कहत सदा श्री जिनवर वाणी।।3।।
जीवनि के परिणामनि की...

सकल उपाधि निमित्त भावनि सों, भिन्न, सु निज परिणति को छनी।
ताहि जान रुचि ठानि होहु थिर, 'भागचन्द' यह सीख सयानी।।4।।
जीवनि के परिणामनि की...

हे प्राणी! जीवों के परिणामों की यह अति विचित्रता तो देखो।।टेक।।

कहीं तो इस जीव ने नित्य निगोद से निकलकर सुखमयी नर पर्याय को प्राप्त किया और अन्तर्मुहुर्त में ही सम्यग्दर्शन प्राप्त कर तथा केवलज्ञान प्रगटकर मोक्ष भी प्राप्त कर लिया।।१।।

दूसरी ओर कोई मुनिराज ग्यारहवें गुणस्थान तक चढ़कर भी गिर जाते हैं और वापस मिथ्यात्व अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं और कुछ समय कम अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल तक संसार ही में परिभ्रमण करते हैं।।२।।

इसलिये जिनेन्द्र भगवान कहते हैं कि हे विषयों में गाफिल जीव ! सावधान हो जाओ और अपने परिणामों की संभाल करो क्योंकि बंध और मोक्ष दोनो परिणामों से ही होता है।।३।।

कविवर भागचन्दजी कहते हैं कि समस्त कर्मोपाधियों के निमित्त से होने वाले भावों से भिन्न अपनी सम्यक् परिणति को पहचानो और उसे जानकर, निश्चयकर उसमें रुचिपूर्वक स्थिर हो जाओ यह ही जिनधर्म की शिक्षाओं का सार है।।४।।

अध्यात्म संजीवनी

भाग - ८

1

हे जिन तेरो सुजस......

हे जिन तेरो सुजस उजागर, गावत हैं मुनिजन ज्ञानी ।। टेक ।।
दुर्जय मोह महाभट जाने, निजवश कीने जगप्रानी,
सो तुम ध्यानकृपान पानी गहि, ततछिन ताकी थिति भानी ।।1।।
सुप्त अनादि अविद्या निद्रा, जिन जन निजसुधि विसरानी ।
है सचेत तिन निज निधि पाई, श्रवन सुनी जब तुम वानी ।।2।।
मंगलमय तु जगमें उत्तम, तुही शरन शिव मग दानी ।
तुवपद–सेवा परम औषधि, जन्म जरा मृतगद हानी ।। 3 ।।
तुमरे पंच कल्यानक माहीं, त्रिभुवन मोददशा ठानी,
विष्णु विम्बर, जिष्णु दिगम्बर, बुध, शिव कह ध्यावत ध्यानी ।। 4 ।।
सर्व दर्व गुन परजय परनति, तुम सुबोध में नहिं छानी ।
तातें 'दौल' दास उर आशा, प्रगट करो निज रस सानी ।।5।।

हे जिनेन्द्र भगवान! आपका सुयश तीनो लोकों में प्रकट हो रहा है, फैल रहा है, मुनिगण और ज्ञानी उसका गुणगान करते हैं। टेक।

हे जिनेश्वर! सारे संसार को वश में करने वाले मोह रूपी महायोद्धा को आपने अपनी ध्यान रूपी तलवार हाथ में लेकर क्षणमात्र में ही उसकी वास्तविक (खोखली) स्थिति को जान लिया है।।१।।

हे ज्ञानसूर्य! अनादि काल से अज्ञान की गहरी निद्रा में सोकर जो अपने आपको भूल गये हैं, जिन्हें अपनी सुधि नहीं रही है, उन्होंने जब आपका उपदेश सुना तो सचेत होकर, अपनी निज निधि को प्राप्त कर लिया है।।२।।

हे प्रभो! आप ही जगत में मंगल हो, उत्तम हो शरण भी आप ही हो, आप ही मोक्षमार्ग को बताने वाले दानी – उपकारक हो। आपके चरणों की सेवा–भक्ति ही जन्म – मृत्यु – रोग रूपी विष को हरने वाली उनका निवारण करने वाली परम औषधि है।।३।।

हे त्रिभुवनगामी! आपके पंचकल्याणकों के अवसर पर तीनों लोकों में साता की, आनंद की लहर दौड़ जाती है। आप विष्णु अर्थात्, ज्ञान के अनंत और असीमित आकाश है, जिष्णु – अपने आपको व कर्म रूपी शत्रुओं को जीतने वालें दिगम्बर हैं, बुद्धिमान है – ज्ञानी हैं और कल्याणकारी हैं, मंगल हैं, यह कहकर ध्यान करने वाले आपका ध्यान करते हैं।।४।।

हे मुक्तिकंत! सभी द्रव्य–गुण–पर्याय और उनकी परिणति आपके ज्ञान में स्पष्ट झलकते हैं, उन्हें आप युगपत एक साथ सहज ही अपने ज्ञान में झलकता हुआ देखते हैं। विश्व में आपसे कुछ भी छिपा हुआ नहीं है। अत: कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि मेरे मन में यह कामना है कि आप अपने समान मुझे भी आत्म रस से भरपूर कर दें।।५।।

2

धन्य-धन्य जिनवाणी माता...

धन्य-धन्य जिनवाणी माता शरण तुम्हारी आये ।
परमागम का मन्थन करके, शिवपुर पथ पर धाये ।।
माता दर्शन तेरा रे! भविक को आनन्द देता है।
हमारी नैया खेता है ।। 1 ।।
वस्तु कथंचित् नित्य-अनित्य, अनेकांतमय शोभे ।
परद्रव्यों से भिन्न सर्वथा, स्वचतुष्टयमय शोभे ।।
ऐसी वस्तु समझने से, चतुर्गति फेरा कटता है।
जगत का फेरा मिटता है ।।2 ।।
नय निश्चय-व्यवहार निरूपण, मोक्षमार्ग का करती।
वीतरागता ही मुक्तिपथ, शुभ व्यवहार उचरती ।।
माता! तेरी सेवा से, मुक्ति का मारग खुलता है।
महा मिथ्यातम धुलता है ।। 3 ।।
तेरे अंचल में चेतन की, दिव्य चेतना पाते ।
तेरी अमृत लोरी क्या है, अनुभव की बरसातें ।।
माता! तेरी वर्षा में, निजानन्द झरना झरता है ।
अनुपमानन्द उछलता है ।।4।।
नवतत्त्वों में छुपी हुई जो, ज्योति उसे बतलाती।
चिदानन्द ध्रुव ज्ञायक घन का, दर्शन सदा कराती ।।
माता! तेरे दर्शन से निजातम दर्शन होता है।
सम्यग्दर्शन होता है ।।5।।

हे जिनवाणी माता! आप धन्य हैं और हम आपकी शरण में आये हैं। परम आगम ग्रन्थों का स्वाध्याय करके मोक्ष मार्ग पर आगे बढ़ रहे हैं। हे माता! आपका दर्शन अर्थात् आपके वचन सुनने से भव्य जीवों को आनंद की प्राप्ति होती है और हमें संसार सागर से पार होने का मार्ग प्राप्त होता हैं।।१।।

आत्मा नित्य–अनित्य आदि अनेक गुणों से सुशोभित अनेकांत स्वरूप है, पर द्रव्यों से सर्वथा भिन्न अपने स्व द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव रूपी चतुष्टय में शोभित है। इस प्रकार आत्मा का स्वरूप समझने से चतुर्गति परिभ्रमण का नाश होता है, संसार में पुन: पुन: आवागमन नष्ट हो जाता है।।२।।

हे माता! आपकी वाणी निश्चय और व्यवहार दोनों नयों के माध्यम से मोक्षमार्ग का स्वरूप समझाती है वीतरागता स्वरूप मोक्षमार्ग को बतलाती है और स्वाध्याय रूपी शुभ व्यवहार की प्रेरणा देती है। आपकी सेवा करने से अर्थात् आपका श्रवण पठन करने से मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है और अनादिकाल के मिथ्यात्व का नाश होता है।।३।।

हे जिनवाणी माता! आपकी शरण में आत्मा की दिव्यता का अनुभव होता है आपकी वाणी की अमृतमयी लोरी में मानो अनुभव रस की बारिश होती है। हे माता! आपके वचन रूपी वर्षा में आत्मा के निजानंद का झरना झरता है और स्वरूप का अनुपम आनंद उछालें मारता है।।४।।

हे माता! आप नव तत्वों के मध्य छिपी हुई एक ज्ञायक ज्योति का दर्शन कराती है और आपकी वाणी चिदानंद ध्रुव ज्ञायक घन आत्मातत्त्व का दर्शन कराती है। हे माता! आपके दर्शन से अर्थात् पठन श्रवण से अपनी आत्मा का दर्शन होता है अर्थात् सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है।।५।।

3 धन धन जैनी साधु अबाधित...

धन धन जैनी साधु अबाधित, तत्त्वज्ञान विलासी हो ।।

दर्शन बोध मयी निज मूरत, जिनको अपनी भासी हो ।
त्यागी अन्य समस्त वस्तु में, अहं बुद्धि दुखदासी हो ।।
धन धन जैनी साधु....

जिन अशुभोपयोग की परिणति, सत्ता सहित विनाशी हो ।
होय कदाच शुभोपयोग तो, तहँ भी रहत उदासी हो ।।
धन धन जैनी साधु....

छेदत जे अनादि दुखदायक, दुविधि बंध की फाँसी हो ।
मोह क्षोभ रहित जिन परिणति, विमल मयंक कला सी हो ।।
धन धन जैनी साधु....

विषय चाह दव दाह बुझावन, साम्य सुधारस रासी हो ।
भागचन्द ज्ञानानन्दी पद, साधत सदा हुलासी हो ।।
धन धन जैनी साधु....

वे दिगम्बर मुनिराज धन्य हैं जो निर्बाध रूप से तत्त्वज्ञान के आनंद में आनंदित रहते हैं।।टेक।।

जो ज्ञान दर्शनमयी अपनी आतमा में अपनापन का अनुभव करते हैं। जिन्होनें समस्त पर वस्तुओं में उस दुख देने वाली एकत्व की मान्यता का त्याग कर दिया हैं।।१।।

वे दिगम्बर मुनिराज धन्य हैं जिन्होंने अशुभ उपयोग की परिणति को मूल से ही नष्ट कर दिया है और यदि–कदाचित शुभ उपयोग होता है तो उसके प्रति भी वह रुचि नहीं रखते हैं।।२।।

वे दिगम्बर मुनिराज धन्य हैं जिन्होंने अनादिकाल से दुख देने वाले द्रव्य बंध और भाव बंध का नाश कर दिया है जिससे उनकी परिणति मोह राग द्वेष से रहित हो गई है मानो वह कालिमा रहित चंद्रमा की कला ही हो।।३।।

वे दिगम्बर मुनिराज धन्य हैं जिन्होंने विषय भोगों की इच्छा रूपी अग्नि को बुझा दिया है और समता रूपी अमृत का निरन्तर पान करते हैं। कविवर भागचन्दजी कहते हैं कि ज्ञान और आनंद रूपी आत्मा को साधने में हमेशा उत्साहवंत मुनिराज धन्य हैं।।४।।

4

निपट अयाना......

निपट अयाना, तैं आपा नहीं जाना,
नाहक भरम भुलाना बे ।। टेक ।।
पीय अनादि मोहमद मोह्यो, परपदमें निज माना बै ।।1।।
चेतन चि भिन्न जड़तासों ज्ञानदरशरस–साना बे।
तनमें छिप्यो लिप्यो न तदपि ज्यों, जलमें कजदल माना बे ।।2।।
सकलभाव निज निज परनतिमय, कोई न होय बिराना वै ।
तू दुखिया परकृत्य मानि ज्यों, नभताड़न––श्रम ठाना बै ।। 3 ।।
अजगनमें हरि भूल अपनपो भयो दीन हैराना बै ।
दोल, सुगुरुधुनि सुनि निजमें निज, पाय लह्यो सुखथाना बे ।।4।।

हे निपट अज्ञानी जीव! तूने अपने स्वरूप को नहीं जाना और व्यर्थ में ही भ्रम के कारण तू अपने आपको भुला रहा है अनादिकाल से मोहरूपी शराब को पीकर तू मोह के नशे मे बहक रहा है और पर में अर्थात् पुद्‌गल देह में ही अपनापन मान रहा है।।१।।

तू दर्शन और ज्ञान स्वभाव वाला चेतन है, उसी से युक्त है जड़ता से – पुद्‌गल से पूर्णत: भिन्न है। तू देह में रहते हुये भी देहस्वरूप नहीं है। जिस प्रकार कमल का पत्ता जल में रहता है, वैसे ही तू भी देह में लिप्त नहीं है, देह से भिन्न ही है।।२।।

सारे भावों की परिणति अपनी–अपनी ही है, कोई भी भाव अन्य द्रव्य का कभी नहीं होता किन्तु तू परद्रव्य की क्रिया को अपना समझकर आकाश को पीटने के समान व्यर्थ ही श्रम कर रहा है।।३।।

तू बकरियों के झुण्ड में रहते हुए सिंह के समान अपने आपको, अपने स्वभाव को भूलकर दीन होकर हैरान हो रहा है। अत: कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि जिसने सत्गुरू की वाणी को सुनकर निज स्वरूप में ही निज को पा लिया, उन्हें वास्तविक सुख के स्थान की प्राप्ति होती है।।४।।

5

विष सम विषयन......

विष सम विषयन को टार टार, गुरु कहत सीख इम बार बार ।।
इन सेवत अनादि दुख पायो, जनम मरण बहु धार–धार ।।
गुरु कहत सीख.......
कर्माश्रित बाधा जुत फांसी, बन्ध बढ़ावन द्वन्दकार ।।
गुरु कहत सीख.......
ये न इन्द्रिय के तृप्ति हेतु, जिन तृष न बुझावत क्षार वार ।।
गुरु कहत सीख.....
इनमें सुख कल्पना अबुध के बुधजन मानत दुख प्रचार ।।
गुरु कहत सीख.....
इन तजि ज्ञान पियूप चखो नित 'दौल' लहो भव वार पार ।।
गुरु कहत सीख...

सदगुरू बारम्बार शिक्षा देते हैं कि हे जीव! ये विषय–भोग विष के समान हैं, इनको छोड़ो! इनके सेवन से ही तुमने अनादिकाल से जन्म–मरण धारण कर–करके अनंत दुख उठाया है।।१।।

ये इन्द्रिय–विषय कर्म के आधीन हैं, बाधा सहित हैं, बन्ध स्वरूप हैं, बन्ध बढ़ाने वाले हैं और दुविधा उत्पन्न करने वाले हैं।।२।।

जिस प्रकार खारा पानी प्यास नहीं बुझाता है उसी प्रकार ये इन्द्रियजन्य–विषयभोग भी आत्मा को कभी तृप्त नहीं करते।।३।।

इनमें सुख की कल्पना अज्ञानी जीव को ही होती है, ज्ञानी जीव तो इनसें दुख की वृद्धि मानते हैं।।४।।

अत: कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि जिन जीवों ने इन इन्द्रिय–विषयों का त्याग करके ज्ञानरूपी अमृत का स्वाद लिया है, उन्होंने ही संसार सागर को पार किया है।।५।।

6

सुमर सदा मन आतमराम...

सुमर सदा मन आतमराम, सुमर सदा मन आतमराम ।। टेक ।।
स्वजन कुटुंबी जन तू पोषै, तिनको होय सदैव गुलाम ।
सो तो हैं स्वारथ के साथी, अंतकाल नहिं आवत काम ।।1 ।।
जिमि मरीचिका में मृग भटकै, परत सो जब ग्रीषम अति घाम ।
तैसे तू भवमाहीं भटकै, धरत न इक छिनहू विसराम ।। 2 ।।
करत न ग्लानि अबै भोगन में, धरत न वीतराग परिनाम ।
फिर किमि नरकमाहिं दु:ख सहसी, जहाँ सुख लेश न आठौ जाम ।। 3 ।।
तातैं आकुलता अब तजिकै, थिर है बैठो अपने धाम ।
'भागचन्द' वसि ज्ञान नगर में, तजि रागादिक ठग सब ग्राम ।। 4 ।।

हे मन! सदा आत्मा का स्मरण किया कर ।।टेक।।

तू सदा परिवार और कुटुम्ब के लोगों का ही हित सोचता है और सदा उनकी ही आधीनता में रहता है परंतु वास्तव में तो वे सभी लोग स्वार्थ वश ही साथ रहते हैं। ध्यान रहे! जीवन के अंत में कोई भी तेरा सहयोग करने वाला नही है।।१।।

जिस प्रकार भीषण धूप पड़ने पर धूल के कण चमकते हैं परन्तु हिरण को उसमें पानी का भ्रम हो जाता है और वह पानी पीने के लिये दौड़ लगाता रहता है और परेशान होता है क्योकि वास्तव में तो पानी नही है। इसी प्रकार अज्ञानी जीव भी संसार में सुख समझकर भटकता रहता है और एक क्षण भी शांति से नहीं बैठ पाता है ।।२।।

यह जीव अज्ञान के कारण भोगों से विरक्त नहीं होता और वीतराग परिणाम धारण नहीं करता। पश्चात मरकर नरक गति में जन्म धारण कर अनेक दु:ख सहन करता है। नरक में आठों पहर अर्थात दिन–रात दु:ख ही भोगता है, वहाँ एक पल का भी सुख प्राप्त नहीं होता ।।३।।

कविवर भागचंदजी कहते हैं कि अब आकुलता का त्यागकर अपने आत्मस्वरूप में स्थिर हो जाओ और समस्त राग आदि दु:ख देने वाले स्थानों को छोड़कर अपने ज्ञान स्वरूप में निवास करो ।।४।।

7

ऐसे विमल भाव जब पावैं...

न मानत यह जिय निपट अनारी,
सिख देख सुगुरु हितकारी ।। टेक ।।
कुमतिकुनारि संग रति मानत, सुमति सुनारि बिसारी ।।
नर परजाय सुरेश चहें सो, चख विषविषय विगारी ।
त्याग अनाकुल ज्ञान चाह, पर–आकुलता विसतारी ।।1।।

अपना भूल आप समतानिधि, भवदुख भरत भिखारी ।
परद्रव्यनकी परनतिको शठ, वृथा वनत करतारी ।।2।।

जिस कषाय–दव जरत तहां, अभिलाष छटा धृत डारी ।
दुखस डरे करै दुःखकारन ते नित प्रीति करारी ।। 3 ।।

अतिदुर्लभ जिनवेन श्रवनकरि, संशयमोह निवारी ।
'दौल' स्वपर–हित–अहित जानके, होवहु शिवमग चारी ।।4।।

सद्गुरू कल्याणकारी शिक्षा दे रहे हैं किन्तु यह जीव अत्यन्त अनाड़ी (अज्ञानी) है जो उस शिक्षा को नहीं मानता। अहो! यह जीव सुबुद्धिरूपी सुन्दर स्त्री को तो भूल गया है और कुबुद्धिरूपी बुरी स्त्री के साथ रहकर सुख मान रहा है ।।टेक।।

जिस मनुष्य पर्याय को इन्द्र भी चाहता है उस पर्याय को इन्द्रिय विषयरूपी विष खाकर बिगाड़ रहा है। अपने आकुलता रहित ज्ञानस्वभाव की अभिलाषा का तो इसने त्याग कर रखा है और परपदार्थ विषय सम्बन्धी आकुलता बढ़ा रखी है ।।१।।

यह जीव यद्यपि स्वयं समता रूपी वैभव का भण्डार है किन्तु उसे भूलकर भिखारी बनकर संसार के दु:खों को सहन कर रहा है। और व्यर्थ ही परपदार्थों की परिणति का कर्ता बन रहा है ।।२।।

अपने अंदर जो कषाय की आग जल रही है उसमें इच्छारूपी घी डालकर उसे और अधिक बढ़ाने का काम कर रहा है। यह जीव यद्यपि दु:ख से डरता है फिर भी सदैव दु:ख के कारणों से बहुत अनुराग करता है ।।३।।

अत: महाभाग्य से प्राप्त जिनेन्द्र भगवान के वचन सुनकर संशय और मोह का निवारण करना चाहिये। कविवर पण्डित दौलतरामजी कहते हैं अपनी आत्मा के हित और अहित जानकर निश्चित ही हमें मोक्षमार्गी होना है ।।४।।

8

अपनी सुधि भूल आप, आप दुःख उपायौ..

अपनी सुधि भूल आप, आप दुःख उपायौ,
ज्यौं शुक नभचाल विसरि नलिनी लटकायो ।। अपनी. ।।
चेतन अविरुद्ध शुद्ध, दरश वोधमय विशुद्ध ।
तजि जड–रस–फरस रूप, पुद्गल अपनायौ ।।1।। अपनी. ।।
इन्द्रियसुख दुःख में नित्त, पाग राग रुख में चित्त ।
दायकभव विपति वृन्द, बन्धको बढ़ायी ।।2।। अपनी. ।।
चाह दाह दाहै, त्यागौ न ताहि चाहै ।
सुधा न गाहै जिन, निकट जो बतायौ ।।3।। अपनी. ।।
मानुपभव सुकुल पाय, जिनवर शासन लहाय ।
'दौल' निजस्वभाव भज, अनादि जो न ध्यायौ ।।4।। अपनी. ।।

जिस प्रकार तोता आकाश में उड़ने रूप अपने स्वभाव को भूलकर नलिनी से लटका रहकर दुःख उठाता है उसी प्रकार, यह जीव स्वयं ही अपने स्वभाव को भूलकर दुःख उठा रहा है ।।टेक।।

यद्यपि यह जीव चैतन्यस्वभाव से अविरुद्ध और शुद्ध दर्शन ज्ञानमय है, विशुद्ध है, फिर भी इसने अपना स्वभाव त्यागकर स्पर्श–रस–वर्ण स्वभाव वाले अचेतन पुद्गल को अपना मान रखा है ।।१।।

यह जीव आज तक हमेशा इन्द्रिय सुख–दुख में ही लगा रहा है, अपने चित्त को राग–द्वेष में ही डुबाकर संसार में दुःख समूह को देने वाले कर्मबंध को ही बढ़ाता आ रहा है ।।२।।

इच्छा रूपी अग्नि इसे जला रही है, फिर भी यह उसे छोड़ना नहीं चाहता और जिसे जिनेन्द्रदेव ने अपने अति निकट बताया है उस समतारूपी अमृत में अवगाहन नहीं करता ।।३।।

कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि हे भाई! अब इस मनुष्य भव, उत्तम कुल और जिनशासन को प्राप्त करके तू अपने उस आत्मस्वभाव का भजन कर, जिसे तूने अनादि काल से आज तक कभी नहीं ध्याया है ।।४।।

9

स्वानुभव के बिना......

स्वानुभव के बिना, भ्रमता ही रहा हूँ मैं (2)
विषयों में सदा, रमता छू रहा हूँ मैं । (2)
चहुँगतियों में इन कर्मों में, (2)
भ्रमता ही रहा हूँ मैं ।।टेक।।
कभी स्वर्ग गया, कभी नर्क गया।
कभी मानव बना, तिर्यंच बनों (2)
कभी भोगों में, कभी रोगों में । (2)
रुलता ही रहा हूँ मैं ।।टेक।।
निज आतम को कभी जाना नहीं ।
कभी परमातम पहिचाना नहीं ।। (2)
कभी शास्त्रों को, कभी सूत्रों को । (2)
रटता ही रहा हूँ मैं ।।टेक।।
नरतन है मिला, जिनधर्म मिला ।
सद्गुरु अरु, धर्म आगम मिला । (2)
अब चित्त सम्हलकर, अब समकित पाके ।
मुक्ति की चलूँगा मैं ।।
चहुंगतियों में इन कर्मों में, (2)
भ्रमता ही रहा हूँ मैं ।।टेक।।

मैं अपने आत्मा के अनुभव के बिना संसार भ्रमण करता रहा हुँ। मैं पंचेन्द्रिय विषय भोगों में लीन रहा और चारों गतियों में भ्रमण करता रहा हुँ।

मैं आत्म अनुभव न करने के कारण कभी स्वर्ग गया, कभी नरक गया, कभी मनुष्य बना और कभी तिर्यंच गति में जन्म लिया। मैं कभी भोगों में रमकर और कभी रोगों के कारण बहुत दु:खी होता रहा।

मैंने कभी अपने आत्म स्वरूप को नहीं जाना और न ही परमात्मा के स्वरूप को पहचाना। मैं कभी शास्त्रों को तो कभी उसके सूत्रों को पढ़कर ही अपने को धर्मात्मा मानता रहा।

मुझे महाभाग्य से मनुष्य पर्याय और महान जैन धर्म प्राप्त हुआ है, साथ ही दिगम्बर गुरू और जिनागम भी प्राप्त हुये हैं। अब मैं प्रतिज्ञा करता हुँ कि अब तक मैं चारों गतियों और कर्मों में भ्रमण करता रहा हुँ, परन्तु अब अपने मन को आत्मा में लगाऊँगा और सम्यक्दर्शन प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करूँगा।

10

ऐसे विमल भाव जब पावैं......

ऐसे विमल भाव जब पावैं,
तब हम नर भव सफल कहावे ।।
दरश बोध मय निज आतम लखि, परद्रव्यनि को नहिं अपनावै ।
मोह राग रुष अहित जान तजि, झटति दूर तिनको छिटकावै ।।
ऐसे विमल भाव जव पावैं....
कर्म शुभाशुभ बंध उदय में, हर्ष विषाद चित्त नहिं लावैं ।
निज हित हेतु विराग ज्ञान लखि, तिनसों अधिक प्रीति उपजावैं ।।
ऐसे विमल भाव जव पावैं....
विषय चाह तजि, आत्म वीर्य सजि, दुख दायक विधि बंध खिरावैं ।
'भागचन्द' शिव सुख सब सुखमय,आकुलता विन लखि चित चावै ।।
ऐसे विमल भाव जब पावें ।।
तब हम नरभव सफल कहावें ।।

जब ऐसे शुद्ध अर्थात निज परिणतिमय भावों की हम प्राप्ति करेंगे तब ही नर भव की प्राप्ति सफल कही जायेगी ।।टेक ।।

जब हम दर्शन–ज्ञान मयी निज आत्मा को ध्याकर परद्रव्य में अपनत्व नही करेंगे और मोह–राग–द्वेष को अहित जानकर, उनका शीघ्र ही त्याग कर देंगे, तब नरभव की सार्थकता होगी ।।१।।

जब हम शुभाशुभ कर्मों के उदय में इष्ट–अनिष्टपना मन में नही लायेंगे अर्थात उन्हें इष्ट–अनिष्ट नहीं जानेंगे और आत्महित में अनुकूल वीतराग–विज्ञानमय स्वभाव का ही ज्ञान करेंगे और उसी में अपनी प्रीति बढायेंगे, तब नरभव की सार्थकता होगी।।२।।

कविवर भागचंद जी कहते हैं कि जब हम विषय भोग की इच्छा का त्याग करके आत्मवीर्य अर्थात आत्मबल द्वारा दुखदायक बंध विधि का नाश करेंगे और अनंत एवं पूर्ण निराकुल सुखमय मोक्षावस्था को प्राप्त करने की चित्त में अभिलाषा रखेंगे तब ही यह नरजन्म सफल माना जायेगा ।।३।।

अध्यात्म संजीवनी

भाग – ९

1

तोरे दर्शन सों

तोरे दर्शन सों, मेरो मनुवा अति हर्षाय ।।
शान्त छवि लखि शान्त भाव है, आकुलता मिट जाय।
तोरे दर्शन सों, मेरो मनुवा अति हर्षाय ।।टेक॥

जबलौं चरण निकट नहिं आया, तबलौं आकुलता थाय ।
अब आवत ही निज निधि पाया, नित नव मंगल पाय ।।1॥
तोरे दर्शन सों, मेरो मनुवा अति हर्षाय ।।टेक॥

'बुधजन' अर्ज करै कर जोरे, सुनिये श्री जिनराय ।
जबलौं मोक्ष होय नहिं तबलौं, भक्ति करूं गुण गाय ।।2॥
तोरे दर्शन सो, मेरो मनुवा अति हर्षाय ।

हे प्रभु! आपके दर्शन करसे मेरा मन अत्यंत प्रसन्न हो जाता है, आपकी शांत छवि देखकर मेरे परिणाम शांत हो जाते हैं और आकुलता का अंत हो जाता है। हे प्रभु! आपके दर्शन से मेरा मन अत्यंत प्रसन्न हो जाता है ॥टेक॥

जब तक मैंने आपके चरणों की शरण प्राप्त नहीं की थी, तब तक मुझे आकुलता हो रही थी और अब जैसे ही मैंने आपके चरणों का सानिध्य पाया तो ऐसा लगा कि मानो मुझे अपनी आत्मा की निधि प्राप्त हो गई है और मुझे हर समय मंगल ही भासित होता है ॥1॥

कविवर बुधजनजी कहते हैं कि हे जिनदेव! मैं हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करता हूँ, कृपया मेरी प्रार्थना सुनिए। मेरी यही भावना है कि जब तक मुझे मोक्ष प्राप्त न हो तब तक मैं आपकी भक्ति व गुणगान करता रहूँ ॥2॥

2

अरहन्त सुमर मन बावरे....

अरहन्त सुमर मन बावरे ।।

ख्याति लाभ पूजा तजि भाई, अन्तर प्रभु लौ लावरे ।।

अरहन्त सुमर मन बावरे ।।टेक ।।

नरभव पाय अकारथ खोवै, विषय भोग जु बढ़ाव रे।

प्राण गये पछितैं है मनुवा, क्षण क्षण छीजै आयु रे ।।1।।

अरहन्त सुमर मन बावरे ।।

युवती तन धन सुत मित परिजन, गज तुरंग रथ चाव रे।

यह संसार स्वपन की माया, आँख मीच बिखराव रे ।।2।।

अरहन्त सुमर मन बावरे ।

ध्याय ध्याय रे अब है अवसर, आतम मंगल गाव रे।

'द्यानत' बहुत कहाँ लौं कहिये, और न कछु उपाव रे ।।3।।

अरहन्त सुमर मन बावरे ।

ए मेरे बावरे मन! अरे मेरे नादान मन! तू अरिहंत के गुणों का स्मरण कर। लाभ और सम्मान की भावना छोड़कर अरे भाई! तू अपने अंतर को अर्थात् मन को प्रभु से जोड़ ले, अंतर में प्रभु की लगन लगा ले, प्रभु की दीपक लौ से अपने को जोड़ ले, एक कर ले अर्थात आत्म स्वरूप में रुचि पूर्वक लीन हो जा ॥टेक॥

तू यह मनुष्य जन्म पाकर भी इसे व्यर्थ ही खो रहा है। तू विषय भोग में ही अपने आप को लगाए हुए हैं, उसमें ही वृद्धिंगत है। इस बहुमूल्य आयु का एक-एक क्षण व्यतीत होता जा रहा है अर्थात् मृत्यु समीप आती जा रही है, यदि नही संभला तब जीवन के अंत समय में फिर पछताना होगा ॥1॥

स्त्री, शरीर, धन, पुत्र, मित्र, परिवारजन, हाथी, घोड़े, रथ इत्यादि जड द्रव्यों के प्रति तेरी रुचि है। यह संसार तो स्वप्न के समान है, अस्थिर है। आंख बंद करने पर जैसे दिखाई देता है वैसे ही यह काल्पनिक संसार शून्य दिखाई देता है ॥2॥

अरे! अब तू आत्मा का ध्यान कर। अभी अवसर है, ऐसा मंगल अवसर फिर प्राप्त नहीं होगा। कविवर द्यानतरायजी कहते हैं कि अधिक क्या कहा जाए? अरे फिर कोई उपाय शेष नहीं बचेगा। हे चंचल मन! अरहंत प्रभु का नाम स्मरण कर ॥3॥

3 जिनवाणी माता रत्नत्रय...

जिनवाणी माता रत्नत्रय निधि दीजिये ॥ टेक ॥
मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चरण से, काल अनादि घूमे।
सम्यग्दर्शन भयौ न तातै दुःख पायो दिन दूने ॥ 1
जिनवाणी. . ॥
है अभिलाषा सम्यग्दर्शन - ज्ञान - चरण दे माता ।
हम पावैं निजस्वरूप आपनों, क्यों न बनै गुण ज्ञाता ॥2॥
जिनवाणी. . ॥
जीव अनन्तानन्त पठाये स्वर्ग मोक्ष में तूने ।
अब बारी है हम जीवन की, होवे कर्म विदूने ॥3 ॥
जिनवाणी. . ॥
भव्य जीव है पुत्र तुम्हारे, चहुँगति दुःख से हारे ।
इनको जिनवर बना शीघ्र अब, दे दे गुण गण सारे ॥4॥
जिनवाणी. . ॥
औगुण तो अनेक होत है, बालक में ही माता ।
पैं अब तुमसी माता पाई, क्यों न बनें गुण ज्ञाता ॥5॥
जिनवाणी. . ॥

हे जिनवाणी माता! मुझे रत्नत्रय रूपी निधि प्रदान करो।॥टेक॥

मैं मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र के कारण अनादिकाल से संसार में घूम रहा हूँ और सम्यक दर्शन के बिना हर दिन दुगने-दुगने दु:ख प्राप्त करता रहा हूँ अर्थात इन दु:खों में मात्र वृद्धि ही हो रही है, हानि नही॥1॥

हे जिनवाणी माता! मेरी यही भावना है कि आप मुझे सम्यक्-दर्शन, सम्यक्-ज्ञान, सम्यक्-चारित्र प्रदान करें अर्थात मुझे रत्नत्रय की प्राप्ति हो। अपने स्वरूप की प्राप्ति कर हम अपने आत्म गुणों को पहचानें॥2॥

हे जिनवाणी माता! तुमने अनंत जीवों को स्वर्ग और मोक्ष प्रदान किया है। अब हमारी बारी है कि हम भी कर्मों को नष्टकर सिद्ध पद की प्राप्ति करें॥3॥

हे जिनवाणी माता! भव्य जीव तुम्हारे पुत्र हैं, जो चार गतियों के दु:ख से थक गए हैं अर्थात विरक्त हैं इसलिए इनको अतिशीघ्र आत्म गुणों का ज्ञान कराकर, जिनेंद्र परमात्मा बना दो॥4॥

हे जिनवाणी माता! बालकों में तो अनेक अवगुण होते हैं लेकिन तुम जैसी माता को पाकर हम अपने गुणों को क्यों ना जानें अर्थात् हमें अपने आत्म गुणों को पहचानना चाहिए॥5॥

4

गुरु समान दाता नहिं कोई...

गुरु समान दाता नहिं कोई
भानु–प्रकाश न नाशत जाको, सो अँधियारा डारै खोई ।।
गुरु. ।।

मेघ समान सबनपै बरसै, कछु इच्छा जाके नहिं होई।
नरक पशुगति आग मांहितैं, सुरग मुक्ति सुख थापै सोई ।।
गुरु. ।।1 ।।

तीन लोक मन्दिरमें जानौ, दीपक सम परकाशक–लोई ।
दीपतलै अँधियार भर्यो है, अन्तर बाहिर विमल है जोई ।।
गुरु. ।।2 ।।

तारन तरन जिहाज सुगुरु हैं, सब कुटुम्ब डोबै जगतोई ।
'द्यानत' निशिदिन निरमल मनमें, राखो गुरु–पद–पंकज दोई ।।
गुरु ।।3 ।।

हे आत्मन! गुरु के समान दाता अर्थात् देने वाला अन्य कोई नहीं है। अपने भीतर की मलिनता रूप अंधकार को जिसे सूर्य का प्रकाश भी नष्ट नहीं कर सकता उसे सच्चे गुरु सम्यग्ज्ञान के प्रकाश से नष्ट कर देते हैं।।टेक।।

जैसे बादल समान रूप से चारों ओर बारिश करता है और बरसने की उसकी कोई इच्छा नहीं होती वह स्वतः ही बरसता है वैसे ही सच्चे गुरु भव्य जीवों को नरक व पशुगति की आग से बाहर निकाल कर उन्हें स्वर्ग और मुक्ति के सुख में मात्र ज्ञानमात्र के द्वारा स्थापित करते हैं।।1।।

वे गुरु तीन लोक में दीपक के समान हैं अर्थात् श्रद्धा व विश्वास के केंद्र हैं। जिस प्रकार दीपक स्वयं जलकर अपने चारों ओर प्रकाश करता है किंतु उस लौकिक दीपक के तले तो अंधकार ही होता है; वहीं जब सच्चे गुरु तप करते हैं तब वे अंतर तथा बाह्य सब ओर से स्व-पर प्रकाशक होते हैं।।2।।

गुरु सम्यग्ज्ञान द्वारा संसार-सागर से पार उतारने के लिए जहाज के समान हैं जबकि सारा कुटुंब-परिवार तो संसार में डुबोने वाला है। कविवर द्यानतराय जी कहते हैं कि अपने मन को निर्मल कर उसमें ऐसे सच्चे गुरु के चरण कमल को सदा आसीन रखो अर्थात् उन्हें श्रद्धापूर्वक सदैव नमन करो।।3।।

5

अहो चैतन्य आनन्दमय

अहो चैतन्य आनन्दमय, सहज जीवन हमारा है।
अनादि अनंत पर निरपेक्ष, ध्रुव जीवन हमारा है ।। टेक ।।

हमारे में न कुछ पर का, हमारा भी नहीं पर में।
द्रव्य-दृष्टि हुई सच्ची, आज प्रत्यक्ष निहारा है ।।1 ।।

अनंतो शक्तियाँ उछलें, सहज सुख ज्ञानमय विलसें ।
अहो प्रभुता परम पावन, वीर्य का भी न पारा है ।।2।।

नहीं जन्मू नहीं मरता, नहीं घटता नहीं वढता,
अगुरुलघु रूप ध्रुव ज्ञायक, सहज जीवन हमारा है ।। 3 ।।

सहज ऐश्वर्य मय मुक्ति, अनंतो गुणमयी ऋद्धि ।
विलसती नित्य ही सिद्धि, सहज जीवन हमारा है ।।4।।

किसी से कुछ नहीं लेना, किसी को कुछ नहीं देना ।
अहो निश्चित परमानन्दमय, जीवन हमारा है ।।5।।

अहो! मेरा जीवन अत्यंत सहज और चैतन्य के आनंद स्वरूप वाला है। अनादि है, अनंत है, और पर की सहायता से रहित है और ध्रुव स्वरूपमय है ॥टेक॥

हमारी आत्मा में कुछ भी अन्य द्रव्यों का नहीं है और हमारे चैतन्य का अंश मात्र भी अन्य द्रव्यों में नहीं है। हमारी दृष्टि आज चैतन्य को जानने वाली हुई है, यह हमने आज प्रत्यक्ष रूप से अवलोकन कर लिया है ॥1॥

मेरे चैतन्य स्वरूप में अनंत शक्तियाँ उछल रही हैं और यह सारी शक्तियाँ सहज, सुख, ज्ञानमय प्रतिभासित हो रही हैं। आज ऐसा लग रहा है कि मेरे चैतन्य की प्रभुता अत्यंत पवित्र है और मेरे उत्साह व पुरुषार्थ का भी आज पारावार नहीं है ॥2॥

मेरा कभी जन्म नहीं होता और न ही मैं कभी मरता हूँ। मैं कभी घटता नहीं ना ही बढ़ता हूँ, मैं ज्ञायक स्वभाव वाला हूँ, यही हमारा सहज जीवन है ॥3॥

मुझे प्रभुता संपन्न मुक्ति प्राप्त हो गई है और अनंत गुणमय ऋद्धियाँ प्राप्त हो गई हैं। ऐसा अनुभव हो रहा है कि मानो चैतन्य की सिद्धि हर पल शोभायमान हो रही है– यही हमारा सहज जीवन है ॥4॥

मुझे पर द्रव्यों से कुछ नहीं चाहिए और न ही किसी अन्य को मुझे कुछ देना है। हमारा जीवन अत्यंत निश्चित और परम आनंदमय और सहज है ॥5॥

5

अहो चैतन्य आनन्दमय

ज्ञानमय लोक है मेरा, ज्ञान ही रूप है मेरा।
परम निर्दोश समतामय, ज्ञान जीवन हमारा है॥6॥

मुक्ति मे व्यक्त है जैसा यहाँ, अव्यक्त है वैसा ।
अवद्धस्पृष्ट अनन्य, नियत जीवन हमारा है ॥7॥

सदा ही है न होता है, न जिसमें कुछ भी होता है।
अहो उत्पाद व्यय निरपेक्ष, ध्रुव जीवन हमारा है ॥8॥

विनाशी बाह्य जीवन की, आज ममता तजी झूठी।
रहे चाहे अभी जाये, सहज जीवन हमारा है ॥9॥

नहीं परवाह अब जग की, नहीं है चाह शिवपद की ।
अहो परिपूर्ण निष्पृह ज्ञान, मय जीवन हमारा है ॥10॥

मेरा चैतन्य मुझे बस ज्ञान ही ज्ञानमय भासित होता है क्योंकि मेरा स्वभाव ज्ञानमय ही है। मेरा जीवन सभी दोषों से रहित समतामय और ज्ञान संपन्न है ॥6॥

मुझे आज ऐसा प्रतिभासित हो रहा है कि जिस तरह सिद्ध अवस्था में स्वरूप व्यक्त हो जाता है, बस उसी तरह यहाँ वह स्वरूप अव्यक्त है परन्तु आनंद सिद्धों जैसा ही है। मेरा स्वभाव किसी से बंधता नहीं, किसी को स्पर्श नहीं करता, किसी रूप नहीं होता और सदैव नियत अर्थात एक समान ही रहता है ॥7॥

मेरा स्वरूप अनादि काल से जैसे का तैसा है, इसमें कुछ नवीन नहीं होता, न ही कुछ इसमें व्यय होता है। मेरा चैतन्य स्वभाव उत्पाद- व्यय से रहित ध्रुव स्वभाव वाला है ॥8॥

आज मैंने पर द्रव्यों के प्रति झूठे ममत्व परिणाम को छोड़ दिया है, अब ये संयोग चाहे मेरे साथ रहें या चले जायें मुझे इसका कुछ भी दुःख नहीं है। मुझे अब संसार की कोई अटक नहीं है और न ही मुझे मोक्ष प्राप्ति की इच्छा है। अहो! मैं वर्तमान में परिपूर्ण हूँ, सभी इच्छाओं से रहित हूँ और मेरा जीवन ज्ञानमय है ॥9-10॥

6

भाई ! कहा देख गरवाना रे

भाई ! कहा देख गरवाना रे
गहि अनन्त भव तैं दुख पायो, सो नहिं जात बखाना रे ।। भाई. ।।

माता रुधिर पिताके वीरज, तातैं तू उपजाना रे ।
गरभ वास नवमास सहे दुख, तल सिर पाँव उचाना रे ।। भाई. ।।1 ।।

मात अहार चिगल मुख निगल्यो, सो तू असन गहाना रे ।
जंती तार सुनार निकालै, सो दुख जनम सहाना रे ।। भाई. ।। 2 ।।

आठ पहर तन मलि मलि धोयो, पोष्यो रैन बिहाना रे ।
सो शरीर तेरे संग चल्यो नहिं, छिनमें खाक समाना रे ।। भाई. ।।3।।

जनमत नारी, बाढ़त भोजन, समरथ दरब नसाना रे ।
सो सुत तू अपनो कर जानै, अन्त जलावै प्राना रे ।। भाई. ।।4 ।।

देखत चित्त मिलाप हरै धन, मैथुन प्राण पलाना रे ।
सो नारी तेरी है कैसे, मूवें प्रेत प्रमाना रे ।। भाई. ।।5 ।।

पाँच चोर तेरे अन्दर पैठे, तें ठाना मित्राना रे ।
खाय पीय धन ज्ञान लूटके, दोष तेरे सिर ठाना रे ।। भाई ।। 6 ।।

देव धरम गुरु रतन अमोलक, कर अन्तर सरधाना रे ।
'द्यानत' ब्रह्मज्ञान अनुभव करि, जो चाहे कल्याना रे ।। भाई ।।7 ।।

अरे भाई ! क्या देखकर तुम इतना गर्व कर रहे हो ? अनंत भव धारण कर तुमने जो दुःख पाया है, उन दुःखों का वर्णन किया जाना संभव नहीं है ॥टेक॥

माता के रज, पिता के वीर्य से तेरी उत्पत्ति हुई। गर्भ में 9 महीने दुःख पाए, जहाँ सिर नीचे और पांव ऊपर किये रहे ॥1॥

गर्भवास में माता ने मुंह से चबाकर जो आहार निगला, वह भोजन ही तुझे खाने को मिला। जैसे सुनार जंत्री में तार खींचता है, जन्म के समय इस प्रकार गर्भ से तुझे बाहर निकाला, अनन्त वेदना तूने भोगी ॥2॥

आठों पहर इस शरीर की स्वच्छता के लिए बार-बार तन धोता रहता है और दिन-रात इसके पोषण में लगा रहता है। वह शरीर तेरे साथ नहीं चलता और क्षण मात्र में खाक में मिल जाता है ॥3॥

यह देह स्त्री के द्वारा उत्पन्न की जाती है, भोजन के द्वारा यह बढ़ती है, बड़ी होती है। तू जिस पुत्र को अपना जानता है वही तुझे, तेरी इस देह को अंत में जला देता है ॥4॥

स्त्री, जो देखते ही मन का हरण कर लेती है, उससे मिलाप होता है तो धन हर लेती है और मैथुन में शक्ति का हरण कर लेती है। तेरे मरते ही जो तुझे भूत के समान मानने लगती है, वह नारी तेरी कैसे हैं? ॥5॥

पांच चोर (इंद्रियाँ) तेरे भीतर बैठे हैं, उनसे तूने मित्रता कर रखी है वह खा-पीकर तेरे ज्ञान धन का नाश करके सारा दोष तेरे ही सिर मंढ़ देंगे ॥6॥

अरे! देव-गुरु-धर्म ये अनमोल रतन हैं। इनमें अंतरंग से श्रद्धा कर। द्यानतरायजी कहते हैं कि जो तू अपना कल्याण चाहता है तो ब्रह्म ज्ञान का अर्थात अपनी आत्मा का अनुभव कर ॥7॥

7

आया कहाँ से, कहाँ है जाना ?

आया कहाँ से, कहाँ है जाना ?
ढूंढ ले ठिकाना चेतन ! ढूंढ ले ठिकाना। सब कुछ तो जाना,
निज को न जाना ?
कैसा ज्ञानधारी तूने, आपा न पहचाना ।। टेक ।।

इक दिन तेरा गोरा तन ये, माटी में मिल जायेगा ।
कुटुम्ब कबीला खड़ा रहेगा, कोई वचा न पायेगा।
नहीं चलेगा, कोई वहाना, ढूंढ ले ठिकाना चेतन... ।।1 ।।

बाहर सुख को खोज रहा है, क्यों बनता दीवाना रे।
आतम ही सुख धाम है चेतन, निज को भूल न जाना रे।
सारे सुखों का ये है खजाना, ढूंढ ले ठिकाना चेतन... ।।2।।

जब तक तन में सांस है चलती, सब तुझको अपनायेंगे ।
जब न रहेंगे प्राण ये तन में, देख इसे घबड़ायेंगे ।
कहीं तो तुझको, पड़ेगा जाना, ढूंढ ले ठिकाना चेतन...।।3।।

धन दौलत और रूप खजाना, पड़ा यहीं रह जायेगा।
दौलत के दीवानों सुन लो, कुछ भी साथ न जायेगा।
आया अकेला, अकेले ही जाना, ढूंढ ले ठिकाना चेतन... ।।4।।

सद्गुरु जगा रहे हैं चेतन, सुन भव से तिर जायेगा ।
सम्यक्दर्शन ज्ञान से चेतन, दुःख सारा मिट जायेगा ।
सच्चे सुखों का यह है खजाना, ढूंढ ले ठिकाना चेतन....।।5।।

हे चेतन! तुम किस पर्याय से आए हो और तुम्हें किस पर्याय में जाना है ? तुम अनंत काल से भटक रहे हो, अब अपना स्थाई ठिकाना ढूंढ लो। तुमने सारी दुनिया को तो जाना परंतु अपनी आत्मा को नहीं जाना। तू कैसा ज्ञान स्वरूपी आत्मा है जो स्वयं की पहचान नहीं कर पाया ॥टेक॥

जिस शरीर पर तू इतना घमंड करता है तेरा यह गोरा शरीर एक दिन मिट्टी में मिलकर नष्ट हो जाएगा और सारा कुटुंब परिवार खड़ा होकर देखता रहेगा, परंतु कोई तुम्हें बचाने में समर्थ नहीं होगा। उस समय तेरा कोई बहाना काम नहीं आएगा इसलिए अपना स्थाई निवास ढूंढ ले ॥1॥

हे चेतन! तू पर द्रव्यों में ममत्व परिणाम करके उनमें ही सुख की खोज कर रहा है लेकिन तू यह नहीं जानतें कि तेरा आत्मा ही सुख का भंडार है इसलिए अपनी आत्मा को कभी नहीं भूलना, यह सारे सुख देने वाला है इसलिए अपना स्थाई ठिकाना ढूंढ ले ॥2॥

हे चेतन! जब तक इस शरीर में सांस चलती रहेगी तब तक परिवार कुटुंब वाले तुझसे प्रेम करेंगे परंतु जिस दिन इस शरीर से प्राण निकल जाएंगे उस दिन यही परिवार कुटुंब वाले इस मृतक शरीर को देखकर के घबराएंगे। हे चेतन! तुझे इस पर्याय के बाद कहीं तो जाना ही है इसलिए अपना शाश्वत स्थान ढूंढ ले। ॥3॥

हे चेतन! तू जिस धन दौलत और रूप पर घमंड करता हैं यह मृत्यु के बाद यहीं रह जाएगा। धन के पीछे अपना जीवन बरबाद करने वालो सुनो ! तुम्हारे साथ मृत्यु के बाद एक पैसा भी नहीं जाने वाला तुम अकेले ही आए हो और अकेले ही जाओगे इसलिए अपना स्थाई ठिकाना ढूंढ ले ॥4॥

हे चेतन! सच्चे गुरु हमें जगाने आए हैं तो यदि इनकी बात को सुनकर धारण करेगा तो संसार सागर से पार हो जाएगा और तुम सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान प्राप्त करोगे, इससे संसार का दुख समाप्त हो जाएगा। सच्चे सुख का रत्नत्रय ही मार्ग है इसलिए अपना स्थाई ठिकाना ढूंढ ले ॥5॥

8

भजन बिन यों ही जनम गंवायो

पानी पैल्या पाल न बांधी, फिर पीछैं पछतायो ।
भजन बिन यों ही जनम गंवायो ।।टेक।।

रामा मोह भये दिन खोबत, आशा पाश बंधायो ।
जप तप संयम दान न दीनों, मानुष जन्म हरायो ।
भजन बिन यों ही जनम गंवायो ।।1।।

देह शीश जब कांपन लागी, दसन चलाचल थायो ।
लागी आग बुझावन कारन, चाहत कूप खुदायो ।
भजन बिन यों ही जनम गंवायो ।।2।।

काल अनादि गंवायो भ्रमता, कबहूँ न थिर चित ल्यायो ।
हरी, विषय सुख भरम भुलानो, मृग तृष्णा वश धायो ।
भजन बिन यों ही जनम गंवायो ।।3 ।।

हे आतमराम! तूने भक्ति के बिना अपना जीवन यूं ही बर्बाद कर दिया। तूने पानी (बाढ़) आने के पहले पाल (सीमा) नहीं बांधी और फिर बाद में पछताते रहे ॥टेक॥

हे आत्माराम! तुमने मोह के वश होकर अपने कई भव खराब कर लिए और इच्छा रूपी बंधन में बंधे रहे। तुमने जाप-तप, संयम आदि नहीं किया, दान नहीं दिया और मनुष्य जन्म को बर्बाद किया। तुमने भक्ति के बिना यूं ही जन्म को खो दिया ॥1॥

हे चेतन! जीवन के अंत में तुम्हारा शरीर और सर जब कांपने लगा और जब मृत्यु नजदीक आ गई फिर तू उपाय करता है मानो तुम आग लगने पर तुरंत ही कुआँ खोदकर उसके पानी से आग बुझाना चाहते हो। तुमने भगवान का गुणगान किये बिना यूं ही जन्म खो दिया है ॥2॥

हे चेतनराम! तुमने अपना अनंत काल संसार में भ्रमण करते हुए खो दिया और कभी भी आत्मा का ध्यान नहीं किया। जिस तरह जंगल में मृग, तृष्णा के वश होकर दौड़ता रहता है इसी तरह तुम विषयों में सुख मानकर आत्मा को भूल गये। तुमने भगवान का भजन किए बिना ही जीवन को बर्बाद कर लिया ॥3॥

9

अहो ! यह उपदेश मांही

अहो ! यह उपदेश मांही, खूब चित्त लगावना ।
होयगा कल्याण, सुख अनन्त बढ़ावना ।।टेक।।
रहित दूषण, विश्व भूषण देव, जिनपति ध्यावना ।
गगनवत् निर्मल अचल मुनि, तिनहिं शीश नवावना ।।1।।
अहो यह उपदेश.....

धर्म अनुकम्पा प्रधान, न कोई जीव सतावना ।
सप्त तत्त्व परीक्षा करि, हृदय श्रद्धा लावना ।।2।।
अहो यह उपदेश....

पुद्गलादिक ते पृथक्, चैतन्य ब्रह्म लखावना ।
या विधि विमल सम्यक्त्व धरि शंकादि पंक बहावना ।।3।।
अहो यह उपदेश....

रुचैं भव्यनि को वचन जे, शठन को न सुहावना ।
चन्द्र लखि जिमि कुमुद विकसै, उपल नहिं विकसावना ।।4।।
अहो यह उपदेश....

'भागचन्द' विभाव तजि, अनुभव स्वभावित भावना ।
या बिन शरण न अन्य, जगतारण्य में कहुं पावना ।।5।।
अहो यह उपदेश.....

अहो आत्मन! तुम भगवान की वाणी सुनने में बहुत मन लगाना, इसी से ही तुम्हारा कल्याण होगा और अनंत सुख की प्राप्ति होगी ॥टेक॥

हे आत्मन् ! जो दोषों से रहित हैं, संपूर्ण विश्व के आभूषण के समान हैं – ऐसे जिनदेव का ही ध्यान करना और जो आकाश के समान निर्मल हैं, अचल हैं – ऐसे मुनिराजों को ही नमस्कार करना ॥1॥

हे चेतनराम! जैन धर्म दया की प्रधानता वाला है। कभी भी किसी जीव को दुखी मत करना और सात तत्वों की परीक्षा करके, उसमें अंतरंग से श्रद्धा करना ॥2॥

हे आत्मन्! तुम पुदगल द्रव्यों से भिन्न अपने चैतन्य आत्मा का दर्शन करना और इस विधि से निर्मल सम्यग्दर्शन को धारणकर, शंका आदि मल का परिष्कार करना ॥3॥

हे चेतन! जिस प्रकार चंद्रमा को देखकर कमल खिल जाता है परंतु पत्थर नहीं खिलता उसी प्रकार भगवान जिनेंद्र देव की वाणी भव्य जीवों को ही पसंद आती है, यह दुर्जनों को पसंद नहीं आती ॥4॥

कविवर भागचंद जी कहते हैं कि हे चेतन! तुम विभाव का त्याग करना और अपने चैतन्य आत्मा का अनुभव करना। अपनी आत्मा की शरण प्राप्त किए बिना संसार रूपी वन में कोई सहायक नहीं है ॥5॥

10

असंख्यात प्रदेश जाके

असंख्यात प्रदेश जाके, ज्ञान दरस अनन्त ।
सुख अनन्त अनन्त वीरज, शुद्ध सिद्ध महन्त ।। रे जिय. ।।1 ।।

अमल अचलातुल अनाकुल, अमन अवच अदेह ।
अजर अमर अखय अभय प्रभु, रहित-विकलप नेह ।। रे जिय. ।।2 ।।

क्रोध मद बल लोभ न्यारो, बंध मोख विहीन ।
राग दोष विमोह नाहीं, चेतना गुणलीन ।। रे जिय. ।।3 ।।

वरण रस सुर गंध सपरस, नाहिं जामें होय ।
लिंग मारगना नहीं, गुणथान नाहीं कोय ।। रे जिय. ।।4 ।।

ज्ञान दर्शन चरनरूपी, भेद सो व्योहार ।
करम करना क्रिया निहचै, सो अभेद विचार ।। रे जिय. ।।5 ।।

आप जाने आप करके, आपमाहीं आप।
यही ब्योरा मिट गया तब, कहा पुन्यरु पाप ।। रे जिय. ।।6 ।।

है कहै है नहीं नाहीं, स्याद्वाद प्रमान ।
शुद्ध अनुभव समय 'द्यानत', करौ अमृतपान ।। रे जिय. ।।7 ।।

हे मन ! सिद्ध भगवान के असंख्यात प्रदेश हैं और उनमें अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्य प्रकट हो गये हैं, वे पुर्ण शुद्धता को प्राप्त महान आत्मा हैं ॥1॥

हे आत्मन्! सिद्ध भगवान मल से रहित हैं, चलायमान नहीं हैं, उपमा आदि से रहित हैं, आकुलता रहित हैं। उनका मन नहीं है, उनकी वाणी नहीं है, उनका शरीर नहीं है, वह जन्म – मरण से रहित अक्षय पद को प्राप्त हुए हैं। वे भय से रहित हैं और वे विकल्प और स्नेह, राग से भी रहित हो गए हैं ॥2॥

हे चेतन! सिद्ध भगवान क्रोध, मान, माया, लोभ से रहित हो गए हैं। वे बंध और मोक्ष से भी रहित हैं। उनके राग – द्वेष मोह नहीं है। वे अपनी आत्मा में लीन हो गए हैं ॥*॥

हे आत्मन्! सिद्ध भगवान के स्पर्श, रस, गंध, वर्ण नहीं है। उनमें लिंग मार्गणा, गुणस्थान आदि भी नहीं हैं ॥4॥

हे मन! सिद्ध भगवान के सम्यक्–दर्शन, सम्यक्–ज्ञान सम्यक्–चारित्र के भेद कहे गए हैं उन्हें व्यवहार से जानना। वहाँ पर न कर्म हैं, न क्रिया है ऐसा अभेद रूप से विचार करना ॥5॥

हे चेतन! सिद्ध भगवान स्वयं के द्वारा, स्वयं में ही, स्वयं को जानते हैं। उनके अंदर सारे विकल्प समाप्त हो गए हैं तो पुण्य और पाप की तो बात ही क्या? ॥6॥

कवि द्यानतरायजी कहते हैं कि हे चेतन! हमने जितना भी वर्णन किया है वह सब स्याद्वाद शैली से समझना। अपनी आत्मा के अनुभव के समय कोई विकल्प नहीं होता; इस तरह अमृत पान करना ॥7॥

अध्यात्म संजीवनी

भाग – १०

1

દૂર કાં પ્રભુ ! દોડ તું

દૂર કાં પ્રભુ ! દોડ તું, મારે રમત રમવી નથી;
આ નયનબંધન છોડ તું, મારે રમત રમવી નથી.દૂર. ૧.
પ્યાસુ પરમ રસનો સદા, શોધું પરમ-રસ-રૂપને;
અનુભવ મને અવળો થયો, એવી રમત રમવી નથી...દૂર. ૨.
હું તો સુધાનો સ્વાદિયો, ચાલ્યો સુધાની શોધમાં;
ત્યાં ઝેરનો પ્યાલો મળ્યો, એવી રમત રમવી નથી....દૂર. ૩
તું આવીને ઉત્સાહ દે કાં ફેંક કિરણ પ્રકાશનાં;
આ લક્ષ વિણ રખડી મર્યાની, આ રમત રમવી નથી....દૂર. ૪
હે તાત ! તાપ અમાપ આ, તપવી રહ્યા છે ત્રિવિધના;
એ તાપમાંહી તપી મર્યાની, આ રમત રમવી નથી...દૂર. ૫.
નથી સહન કરી શકતો પ્રભુ ! તારા વિરહની વેદના;
હે દેવ ! તુજ દર્શન વિના, મારે રમત રમવી નથી....દૂર. ૬.
નથી સમજ પડતી હે પ્રભુ ! કઈ જાતની આ રમત છે;
ગભરાય છે ગાત્રો બધાં, મારે રમત રમવી નથી.દૂર. ૭.
હો એ રમત ઘડી બે ઘડી, બહુ તો દિવસ બે ચારની;
આ તો અનંતા યુગ ગયા, એવી રમત રમવી નથી....દૂર. ૮.
ત્રિભુવનપતિ ! તુજ નામના થાક્યો કરી કરી સાદને;
સુણતા નથી કયમ દાસને, આવી રમત રમવી નથી.દૂર. ૯.

हे प्रभु मै आपके समीप रहूँ! अब विषयों के पीछे दौड़ु नहीं, मैं संसार में घूमना नहीं चाहता; इस मोह बंधन को छोड़ दू, मैं और भव भ्रमण करना चाहता नहीं। मुझे सदा परम सुख की अभिलाषा हैं परम-रस-रूप की खोज का निर्णय हुआ हैं; आत्म अनुभव ने मुझे इस क्षणिक संसार के विषयों से दूर कर दिया... दूर॥1-2॥

मैंने आत्मिक सुख याने अमृत का स्वाद् चखा है, सुधा की खोज में; जहाँ जहर का प्याला मिले, ऐसा उपक्रम नहीं करना। ऐसा कोई राग द्वेष नहीं करना। आप मेरे हृदय में आओ, मन उत्साहित करो या मेरे अंतर में समा जाओ, अपने ज्ञान प्रकाश की किरणों से हमें प्रकाशित कीजिए।; (क्योंकि आप स्व पर प्रकाशत्व शक्ति से परिपूर्ण हो।) ऐसे लक्ष्य के बिना जीवन की एक भी घड़ी कार्यकारी नहीं है। प्रभु...॥3-4॥

हे तात! ताप अपरिमेय है, आपने त्रिविधि कर्म को जला दिए हैं; इस तप रूपी अग्नि में तपकर, यह संसार स्वांग फिर कटना नहीं है। प्रभु हम आपका विरह सहन नहीं कर सकते! प्रभु! आपके विरह का दुख असहनीय हैं ; हे प्रभु! आपके दर्शन के बिना, मुझे कहीं भी अच्छा नहीं लगता। दूर...॥ 5-6॥

मुझे समझ नहीं आता प्रभु! यह कैसा विचित्र संयोग है; रूह का हर कतरा डरा हुआ है, मैं ऐसे संसार के दुःख नहीं चाहता। मुझे तो आपके समान सच्चा सुखी और निर्भय होना हैं। जैसे कोई खेल घंटे दो घंटे तक चलता है, कभी-कभी दो या चार दिन तक चलता है, लेकिन अनंत युग बीत गया है, ऐसा कोई कार्य नहीं जो मैंने कभी नहीं किया, ऐसा कोई भोग नहीं जो मैंने नहीं भोगा।दूर...॥7-8॥ (अनादि काल से हमने अनंत बार पंच परावर्तन पूरे किये, फिर भी सच्चा सुख नहीं मिला ऐसा क्यों ? क्योंकि सच्चा अपना स्वरूप नहीं समझा)

हे त्रिभुवनपति! आपके नाम मात्र का स्मरण करने से भव की थकान मिट जाती है। हे प्रभु! मेरी विनती सुनिए, मुझे सदा के लिए अपने चरणों में स्थान दीजिए, अपने समान वीतरागी बना लीजिए। मै भी परिपूर्ण हूँ, सुन लीजिए विनती मेरी, दूर ऐसा भव भ्रमण हो ॥9॥

जन्म मरण जरा रोग से दूर हो जाऊँ।

2

विषयों की तृष्णा को छोड़ के..

विषयों की तृष्णा को छोड़ के, संयम की साधना में, चल पड़े नेमिकुमार ।
परिग्रह की चिन्ता को तोड़ के, निज के चिन्तन में, रम रहे नेमिकुमार॥ टेक॥
यह जीव अनादि से, है मोह से हारा,
चहुँगति में भटक रहा, दुख सहता बेचारा ।
कोई नहीं है शरण अतः आतम की शरण में,
जाना जगत असार, चल पड़े नेमिकुमार ॥ १ ॥
विषयों की तृष्णा को छोड़ के, संयम की साधना में, चल पड़े नेमिकुमार ।
प्रभु चल पड़े वन को, ध्यायें निज चेतन को,
सब राग तन्तु तोड़, काटे भव वन्धन को ।
फिर मोह शत्रु नाशें और क्षायिक चारित्र धारें,
जिसमें है आनन्द अपार, चल पड़े नेमिकुमार ॥ २ ॥
विषयों की तृष्णा को छोड़ के, संयम की साधना में, चल पड़े नेमिकुमार ।
कर चार घातिये क्षय, प्रगटे चतुष्टय अक्षय,
सारी सृष्टि झलके, परिणति निज में तन्मय ।
शाश्वत शिवपद पायें, और अब मुक्ति वधु व्याहें,
हो भव-सागर पार, चल पड़े नेमिकुमार ॥ ३ ॥
विषयों की तृष्णा को छोड़ के, संयम की साधना में, चल पड़े नेमिकुमार ।

अहो! धन्य हैं २२वें तीर्थंकर नेमिकुमार! जिन्होंने सभी इन्द्रिय विषयों की तृष्णा का त्याग कर दिया है, जो अब मात्र अपने अन्तरंग में विद्यमान आत्मा में लीन होने हेतु संयम के मार्ग पर अग्रसर हो चुके हैं। उन्हें अब अपने राज-वैभव के परिग्रह की चिन्ता नहीं है, वे तो निजात्म के चिन्तन में ही रमने की ओर अग्रसर हैं॥ टेक॥

निश्चय से देखा जाये तो यह जीव इस पर्यायमात्र जितना नही अपितु यह तो अनादि से इस जग में रहने वाला है, परन्तु अनन्त संसार का कारण अर्थात मोह उससे विजयी नही हो पाया अतः चतुर्गति में परिभ्रमण कर रहा है, अनन्त दुःख सह रहा है। इस जीव को संसार के परमार्थ का भान नही कि इस जगत में सुख-दुख हेतु कोई शरण नही, निश्चय शरण तो निज भगवान आत्मा ही है। लेकिन देखो! इस सत्य से नेमिकुमार का तो अब परिचय हो गया है अतः वे इस संसार को असार जानकर अपना मोक्षमार्ग प्रशस्त करने चल पडे हैं॥ १ ॥

नेमि प्रभु तो अब वन की ओर उन्मुख हो चुके हैं, वहाँ समस्त परिग्रह का त्यागकर वे निज चेतन का ही ध्यान करेंगे। उन्होंने सभी राग के बंधनों को तोड दिया है अतः संसार मोह के बंधन को काटने हेतु वे तत्पर हैं। छठवें-सातवे गुणस्थान में झूलने वाले नेमि मुनिराज जब उग्र ध्यान में लीन होंगे, तो वे श्रेणी आरोहण कर सम्पूर्ण मोह का क्षय कर बारहवें गुणस्थान को प्राप्त हो जायेंगे। जहाँ दर्शन एवं चारित्र मोह के क्षय होने से क्षायिक सुख व चारित्र की प्राप्ति होगी और अपार अतीन्द्रिय सुख का वे भोग करेंगे॥ २ ॥

बारहवें गुणस्थान में जब वे आत्मा में क्षायिक भाव से लीन होंगे तो कुछ ही समय पश्चात उन्हें चार घातिया कर्मों का क्षय हो जायेगा और वे अनन्त चतुष्टय के धारी जिनेन्द्र परमात्मा बन जायेंगे और उनके ज्ञान में सम्पूर्ण विश्व अपने द्रव्य-गुण-पर्याय सहित जानने में आयेगा। तथापि वे उनमें नही अपने आत्मस्वभाव में ही केन्द्रित होंगे। तेरहवें गुणस्थान में उनके तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति का उदय होगा और सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से समवशरण की रचना होगी। और उसके भी कुछ समय पश्चात जब वे योग निरोध करके चार अघातियाँ कर्मों का भी क्षय कर देंगे तब उनका परिणय मुक्ति रूपी वधु से होगा अर्थात वे शाश्वत सिद्ध अवस्था को प्राप्त होंगे और संसार समुद्र से सदा-सदा के लिये पार हो जायेंगे॥ ३ ॥

3

हे प्रभुवर धन्य हो तुम

हे प्रभुवर धन्य हो तुम, निज में ही रहते हो ।
निज स्वरूप को दर्शाते, ज्ञायक में ही रहते हो ।। (२)
तुम जैसा बन जाऊँ, सम्यक्दर्शन पा जाऊँ।
हे प्रभु... हे प्रभु... हे प्रभु... हे प्रभु.... ॥टेक॥
वीतराग छवि प्यारी है, जग जन तो मनहारी है।
समता पाठ पढाती है, ध्यान की याद दिलाती है ।।
निज स्वरूप में जाना है, शुद्धातम में रहना है।
तुम जैसा तुम जैसा, हे प्रभु... हे प्रभु... ॥१॥
ऐसा ही प्रभु में भी हूँ, ये प्रतिविम्ब ही मेरा है।
भली भांति मैंने पहचाना, ऐसा रूप भी मेरा है ।।
अब ना ये गलती करना, निज में ही दृष्टि करना है।
तुम जैसा तुम जैसा, हे प्रभु... हे प्रभु... ॥२॥
ध्रुवदृष्टि प्रगटी मुज में, अब ध्रुव में ही स्थिरता हो ।
ज्ञेयो में उपयोग ना जावे, ज्ञायक में ही रमता हो ।।
अब नहीं पर में जाना है, निज में ही रम जाना है।
तुम जैसा तुम जैसा, हे प्रभु... हे प्रभु... ॥३॥
जैसा प्रभु का रूप है, वही स्वरूप ही मेरा है।
परम पारिणामिक अविकारी, ध्रुव स्वरूप ही मेरा है।
मोक्षपुरी में चलना है, शिवरमणी को वरना है।
तुम जैसा तुम जैसा, हे प्रभु... हे प्रभु... ॥४॥

हे प्रभु! आप धन्य हैं क्योंकि आप अपने आत्म स्वरूप में ही रहते हैं और आप स्वरूप को ही दिखाते हैं और अपने ज्ञायक स्वरूप में निवास करते हैं। हे प्रभु ! मेरी भावना है कि मैं सम्यकदर्शन पाकर आपका समान बन जाऊँ॥ टेक॥

आपकी वीतरागी मुद्रा अत्यंत सुंदर है और जगत के जीवों का मन हरने वाली है । आपकी मुद्रा समता भाव की शिक्षा देती है और हमें ध्यान करने की प्रेरणा देती है। हे प्रभु! मेरी भावना है कि आपके समान मुझे अपने शुद्धात्मा में और अपने आत्म स्वरूप में ही रहना है॥ १॥

हे प्रभु! आपको देखकर ऐसा लगता है कि यह प्रतिबिंब मेरे स्वरूप को ही दिखा रहा है। मैं भी आपके समान हूँ। मैंने आपका रूप सम्यक प्रकार से पहचान लिया है कि मेरा स्वरूप भी आपके समान है। मेरी भावना है कि अब मुझे आत्मा को भूलने की गलती नहीं करना है और अपनी आत्मा की दृष्टि करना है॥ २॥

हे प्रभु! आपके दर्शन करने से मेरे अंदर में ध्रुव चैतन्य की दृष्टि प्रकट हो गई है। अब भावना यह है कि चैतन्य में ही स्थिर रहूँ, मेरा उपयोग ज्ञेयों में न जाए और ज्ञायक में ही रमण करे। अब मुझे परद्रव्यों में ना जाकर आत्मा में ही रमण करना है॥ ३॥

हे प्रभु! जैसा आपका स्वरूप है वैसा ही मेरा स्वरूप है। मैं भी परम परिणामिक भाव वाला, विकारों से रहित ध्रुव स्वरूप वाला हूँ। मेरी भावना है कि अब मुझे भी मोक्ष में चलना है और मुक्तिरूपी वधू का वरण करना है॥ ४॥

4

और अबै न कुदेव सुहावै

और अबै न कुदेव सुहावै, जिन थाके चरनन रति जोरी ॥टेक॥

कामकोहवश गदैं अशन असि, अंक निशंक धरै तिय गोरी ।
औरनके किम भाव सुधारें, आप कुभाव-भारधर-धोरी ॥१॥

तुम विनमोह अकोहछोहविन, छके शांत रस पीय कटोरी ।
तुम तज सेय अमेय भरी जो, जानत हो विपदा सब मोरी ॥२॥

तुम तज तिनै भजै शठ जो सो, दाख न चाखत खात निमोरी ।
है जगतार उधार 'दौलको', निकट विकट भवजलधि हिलोरी ॥३॥

हे जिनेन्द्रदेव अब मुझे मिथ्यादेव अच्छे नहीं लगते। अब तो मैंने आपके चरणों से प्रेम जोड लिया है ॥ टेक ॥

मिथ्यादेव काम-क्रोध के वशीभूत हैं, भोजन ग्रहण करते हैं, शस्त्र धारण करते है और निःशंक होकर अपने साथ में सुन्दर स्त्री को धारण करते हैं। वे दूसरों के भाव क्या सुधारेंगे? स्वय ही अनेक खोटे भावों को धारण करते हैं ॥ १ ॥

किन्तु हे जिनेन्द्रदेव । आप मोहरहित है, क्रोधरहित हैं, क्षोभरहित हैं और शान्तिरस की कटोरी पीकर तृप्त हो गये हैं। मैंने आपकी सेवा का त्यागकर जो अनन्त दुःख सहन किये है, उन्हें आप भली-भांति जानते हैं ॥ २ ॥

हे प्रभो ! जो जीव आपको त्यागकर उन मिथ्यादृष्टि देवों की उपासना करते हैं वे दाख का स्वाद नही लेते, निबोरी ही खाते हैं। कविवर दौलतराम कहते है कि हे जगत को तारनेवाले जिनेन्द्रदेव । इस भयानक संसार-समुद्र की हिलोरों से मेरा शीघ्र उद्धार कीजिए ॥ ३ ॥

5

नाथ मोहि तारत क्यों ना

नाथ मोहि तारत क्यों ना ? क्या तकसीर हमारी ? ।। टेक ।।
अंजन चोर महा अघकरता, सप्तविसनका धारी ।
वो ही मर सुरलोक गयो है, बाकी कछु न विचारी ।।१।। नाथ.।।
शूकर सिंह नकुल बानर से, कौन कौन व्रतधारी ?
तिनकी करनी कछु न विचारी, वे भी भये सुर भारी ।।२।। नाथ.।।
अष्टकर्म वैरी पूरबके, इनमो करी खुवारी ।
दर्शनज्ञानरतन हर लीने, दीने महादुख भारी ।।३।। नाथ.।।
अवगुण माफ करे प्रभु सबके, सबकी सुध न विसारी ।
'दौलत' दास खड़ा करजोरे, तुम दाता में भिखारी ।।४।। नाथ।।

हे स्वामी! आप इस संसार-सागर से मुझे क्यो नहीं पार करते हैं? मेरा क्या दोष है? ॥ टेक ॥

हे स्वामी अंजन चोर बडे-बडे पाप करता था और सप्त व्यसनों का धारक था, किन्तु वह भी यहाँ में मरकर देवलोक में गया है। आपने उसके पापों पर कोई ध्यान दिया ॥ १ ॥

इसी प्रकार शूकर, सिंह, नकुल ओर वानर ने भी कोई व्रतादि नही धारण कर रखे थे, परन्तु वे भी मरकर स्वर्ग में देव हुए है। आपने उनके कर्मों की ओर भी कोई ध्यान नही दिया ॥ २ ॥

हे स्वामी। ये अष्टकर्म मेरे पूर्व जन्म के शत्रु हैं। इन्होंने मेरी दुर्दशा कर रखी है, मेरे दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी रत्नों को मुझसे छीन लिया है ओर मुझे अपार दुख दे रखा है ॥ ३ ॥

कविवर दौलतराम कहते है कि हे स्वामी! आपने सबके अवगुणो को क्षमा किया और सभी को भली प्रकार संभाला है। अब आपका दास मैं भी आपके समक्ष हाथ जोडकर खड़ा हूँ। मेरा भी उद्धार कीजिए। हे स्वामी! आप बड़े दाता हैं ओर मै भिखारी हूँ ॥ ४ ॥

6

तन देख्या अथिर घिनावना

तन देख्या अथिर घिनावना ।। तन. । । टेक ।।

बाहर चाम चमक दिखलावै, माहीं मैल अपावना ।
बालक जवान बुढ़ापा मरना, रोगशोक उपजावना ।। १ ।। तन. ।।
अलख अमूरति नित्य निरंजन, एकरूप निज जानना ।
वरन फरस रस गंध न जाकै, पुण्य पाप विन मानना ।।२ ।। तन. ।।
करि विवेक उर धारि परीक्षा, भेद- विज्ञान विचारना ।
'बुधजन' तनतें ममत मेटना, चिदानंद पद धारना ।। ३ ।। तन. ।।

मैंने शरीर का स्थिर और घिनौना रूप देख लिया है॥ टेक॥

बाहर से तो यह शरीर अथवा चमडी सुन्दर दिखाई देती है परंतु अंदर इस अस्थिर देह के पीछे अपवित्र मैल ही मैल है। यह शरीर बालक, युवावस्था, वृद्धावस्था और मृत्यु के स्वरूप वाला है और रोग और शोक को उत्पन्न करने वाला है॥ १॥

मैं तो इंद्रियों से पार, अमूर्तिक, सदा रहने वाला, विकार रूपी कालिमा से रहित एक रूप निज स्वभाव वाला हूँ। मेरे चैतन्य में वर्ण, स्पर्श, रस, गंध नहीं है और मेरी आत्मा में पुण्य पाप के परिणाम भी नहीं हैं॥ २॥

कविवर बुधजनजी कहते हैं कि हृदय में भेदज्ञान धारण करके देह और आत्मा की परीक्षा करना और सम्यक दर्शन की प्राप्ति करना चाहिये। शरीर की में एकत्व भाव को नष्ट करके चिदानंद पद को धारण करना चाहिए॥ ३॥

7

आतम अनुभव करना रे भाई

आतम अनुभव करना रे भाई, आतम अनुभव करना रे।।
जब लों भेद ज्ञान नहिं उपजै, जन्म मरण दुख भरना रे ।।
आगम पढ़ि नव तत्त्व बखानै, व्रत तप संयम धरना रे।
आतम ज्ञान बिना नहिं कारज, योनी संकट परना रे ।।
आतम अनुभव करना रे भाई आतम अनुभव करना रे ।।
सकल ग्रंथ दीपक हैं भाई, मिथ्या तम के हरना रे।
कहा करें ते अंध पुरुष को, जिन्हें उपजना मरना रे।।
आतम अनुभव करना रे भाई आतम अनुभव करना रे ।।
'द्यानत' जे भवि सुख चाहत हैं, तिनको यह अनुसरना रे।
सोऽहं, ये दो अक्षर जपकै, भव जल पार उतरना रे ।।
आतम अनुभव करना रे भाई आतम अनुभव करना रे ।।

हे भाई! अपनी आत्मा का अनुभव करना। जब तक भेद ज्ञान उत्पन्न नहीं होगा तब तक जन्म और मरण के कष्टों को सहन करना पड़ेगा॥ टेक॥

शास्त्र अभ्यास करना, नव तत्वों की चर्चा एवं व्रत-नियम संयम व तप धारण करने के बाद भी यदि आत्मज्ञान का कार्य नहीं किया तो हमें संसार के दुखों को सहन करना पड़ेगा, इसलिए अपनी आत्मा का अनुभव करना॥ १ ॥

जितने भी जैन शास्त्र हैं वे दीपक की तरह हैं और मिथ्यात्व रूपी अंधेरे को दूर करने वाले हैं परंतु जिन्हें शास्त्र अभ्यास नहीं करना है वे अंधे पुरुष की तरह हैं और उन्हें जन्म मरण का कष्ट सहन करना पड़ेगा। अतः हे भाई! अपनी आत्मा का अनुभव करना॥ २ ॥

कविवर द्यानतराय जी कहते हैं कि जो भव्य जीव सुख की प्राप्ति करना चाहते हैं उनको इन शास्त्रों का अनुसरण करना चाहिए। सोऽहं अर्थात वही मैं हूं - इन दो अक्षरों का ध्यान करके भव संसार से पार उतरना चाहिए। हे भाई! अपनी आत्मा का अनुभव करना॥ ३ ॥

8

आतम जानो रे भाई

आतम जानो रे भाई! ॥ टेक ॥

जैसी उज्जल आरसी रे, तैसी आतम जोत ।

काया-करमनसों जुदी रे, सबको करै उदांत ॥ आतम.॥१॥

शयन दशा जागृत दशा रे, दोनों विकलपरूप ।

निरविकलप शुद्धातमा रे, चिदानंद चिद्रूप ॥ आतम.॥२॥

तन वचसेती भिन्न कर रे, मनसों निज लौं लाय।

आप आप जब अनुभवै रे, तहां न मन वच काय ॥ आतम.॥३॥

छही दरब नव तत्त्वतैं रे, न्यारो आतमराम ।

'द्यानत' जे अनुभव करें रे, ते पावैं शिवधाम ॥ आतम.॥४॥

हे भाई! अपनी आत्मा को जानो ॥ टेक ॥

जैसे दर्पण उज्ज्वल, स्वच्छ व स्पष्ट होता है वैसे ही उज्ज्वल, स्वच्छ व स्पष्ट आत्मा होती है। जैसे स्वच्छ दर्पण स्पष्ट व उज्ज्वल छवि प्रकाशित करता है वैसे ही शरीर और कर्मों से भिन्न ज्योतिरूप यह आत्मा सबको प्रकाशित करनेवाला है ॥ १ ॥

निद्रित होना व जागृत होना दोनों ही विकल्प हैं। इन दोनों ही अवस्थाओं से परे है अपने निर्विकल्प शुद्ध आत्मा का स्वरूप, स्थिर व अचल, शान्त व निर्मल ॥ २ ॥

देह और वचन से भिन्न करके अपने मन से इसमें लौ लगाओ, रुचि जगाओ। जब तुम्हारे अनुभव में इसके अस्तित्व का भान हो, तो वहाँ मन, वचन और काय तीनों का अभाव हो जायेगा ॥ ३ ॥

यह आत्म द्रव्य छहों द्रव्य, सात तत्व व नोकर्म से सर्वथा भिन्न है। कविवर द्यानतराय जी कहते हैं कि जो इसका अनुभव करता है वह ही मोक्ष को पाता है ॥ ४ ॥

9

परनति सब जीवनकी

परनति सब जीवनकी, तीन भाँति वरनी।
एक पुण्य एक पाप, एक रागहरनी ॥टेक॥
तामे शुभ अशुभ अंध, दोय करें कर्मबंध ।
वीतराग परनति ही, भवसमुद्रतरनी ॥१॥
जावत शुद्धोपयोग, पावत नाहीं मनोग।
तावत ही करन जोग, कही पुण्य करनी ॥२॥
त्याग शुभ क्रियाकलाप, करो मत कदाच पाप।
शुभमें न मगन होय, शुद्धता विसरनी ॥३॥
ऊँच ऊँच दशा धारि, चित्त प्रमाद को विडारि ।
ऊँचली दशातें मति, गिरो अधो धरनी ॥४॥
भागचन्द' या प्रकार, जीव लहै सुख अपार ।
याके निरधार स्याद-वाद की उचरनी ॥५॥

सभी जीवों की परिणति तीन प्रकार से बताई गई है - पुण्य, पाप और राग का हरण करने वाली (शुद्ध)॥ टेक॥

उनमें पुण्य-पाप परिणति (शुभाशुभ) बन्धरूप होती है जिससे कर्म बन्धन होता है और शुद्ध वीतराग परिणति भवरूपी समुद्र को पार कराती है॥ १॥

जबतक मनोज्ञ शुद्धोपयोग प्राप्त न हो तबतक ही पुण्य परिणति करने योग्य कही है॥ २॥

पुण्य (शुभ) रूप परिणति को त्यागकर पाप के कार्य मत करो किन्तु शुभ में मगन होकर शुद्ध परिणति को भूलना नहीं चाहिए॥ ३॥

ऊँची-ऊँची दशा को धारणकर चित्त के प्रमाद को खत्मकर ऊँची दशा से नीची दशा की ओर मत गिरना॥ ४॥

भागचंद जी कह रहे हैं कि इसप्रकार ही जीव अपार सुख को प्राप्त करता है। इसका निर्धारण करना ही स्याद्वाद की कथन पद्धति है॥ ५॥

10

आतम अनुभव आवै

आतम अनुभव आवै...

आतम अनुभव आवै जब निज आतम अनुभव आवै,

और कछु न सुहावै जब निज आतम अनुभव आवै ॥टेक॥

रस नीरस हो जात तत्-च्छिन, अक्ष विषय नहि भावै ॥१॥

जब निज आतम अनुभव आवै...

गोष्ठी कथा कुतुहल विघटे, पुगल प्रीति नसावै ॥२॥

जब निज आतम अनुभव आवै...

राग-द्वेष जुग चपल पक्षजुत, मन पक्षी मर जावै ॥३॥

जब निज आतम अनुभव आवै...

ज्ञानानन्द सुधारस उमगे, घट अन्तर न समावै ॥४॥

जब निज आतम अनुभव आवै...

'भागचन्द' ऐसे अनुभव के हाथ जोरि सिर नावे ॥५॥

जब निज आतम अनुभव आवै...

जब अपनी आत्मा का अनुभव होता है तब कहीं और मन नहीं लगता॥ टेक॥

संसार के बाहर के सभी रस आत्मा के अनुभव के बाद रस विहीन हो जाते हैं और इंद्रियों के विषय भोग भी मन को नहीं भाते॥ १॥

जब अपने चैतन्य का अनुभव होता है तब गोष्ठी, कथा आदि सांसारिक चर्चाओं में जिज्ञासा समाप्त हो जाती है और पुद्गल के प्रति ममत्व परिणाम नष्ट हो जाता है॥ २॥

अपनी आत्मा का अनुभव हो जाने पर राग और द्वेष रूपी पक्षपात वाले परिणाम और मन की वासनाए समाप्त हो जाती हैं॥ ३॥

जब अपनी आत्मा का अनुभव होता है तब अंतर में ज्ञान और आनंद रूपी अमृत रस का जन्म होता है और मानो आत्मा का अपार आनंद अंतर में नहीं समाता॥ ४॥

कविवर भागचंद जी कहते हैं कि मैं ऐसे आत्मा के अनुभव को हाथ जोड़कर और सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ॥ ५॥

ADHYATAM SANJEEVANI
· Songs Available On AUDIO APP ·

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust

302, Krishna Kunj, V. L. Mehta Marg, Vile Parle (West)
Mumbai - 400 056 INDIA
Tel. : +91 22 2613 0820 / 2610 4912
info@vitragvani.com www.vitragvani.com / vitragvanee /c/vitragvanii